भूमिका

बम्बई विधान परिषद में श्री प्रभुदास बालुभाई पटवारी द्वारा वाल सन्यास दीक्षा प्रतिवन्धक विधेयक उपस्थित किया गया है। इस विधेयक के अनुसार १८ वर्ष से कम उम्र की वालक वालिकाएँ दीक्षा नही ले सकेंगे। दीक्षा लेने पर दीक्षा रद्द समझी जायगी। जो वैरागी वालक अपनी स्वेच्छा से दीक्षा लेना चाहे और इसके लिये अपने अभिभावको की स्वीकृति भी प्राप्त कर ले तो भी कोई भी धर्माचार्य या गुरु उसे दीक्षित करेगा तो वह कारावास और दण्ड का भागी होगा।

वाल-दीक्षा की वुराई को वताते हुए निरर्थक और निराधार कई मनगढन्त वुराइया वताई जा रही है। कोई वालक भी वैरागी हो मकता है और वह प्रव्रज्या ले सकता है, यह वात ही भौतिकता के इस युग में अटपटी और दुष्कर लगती है। सारा विरोध एकमात्र इसी भावना पर खडा है।

इस पुस्तक मे वाल-दीक्षा के प्रति उठाई हुई एक-एक शका का वडे मनोवैज्ञानिक युक्ति-पुरस्सर ढग से समाधान किया गया है। भारत की आध्यात्मिक सस्कृति के विकास और सरक्षण मे वालदीक्षित ऋषि-मुनियो का कितना योगदान रहा है, इसका सुन्दर और सजीव चित्र पुस्तक पढते ही सामने आ जाता है, तथा वाल दीक्षा के विरोध मे जिन अपुष्ट युक्तियो को काम में लाया जाता है, यह भी अच्छी तरह प्रकट हो जाता है।

लेखक-परिचय

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक मुनि श्री नगराजजी महाराज स्वय ही एक बाल-दीक्षित मुनि है। आप आचार्य श्री तुलसी के एक यशस्वी शिष्य है। हिन्दी, सस्कृत व राजस्थानी भाषा पर आपका उच्च स्तरीय अधिकार है। अग्रेजी भाषा मे भी आपकी अच्छी गति है। सस्कृत भाषा के आशुकवि, प्रशस्त-वक्ता तथा अभ्यस्त लेखक है। आपने अब तक अनेको पुस्तके लिखी है, जिनमे 'अणुव्रत-दृष्टि', 'आचार्य भिक्षु और महात्मा गाधी', 'अणुव्रत-जीवन दर्शन', 'दर्शन और विज्ञान' आदि विचार-प्रधान पुस्तके आपके गम्भीर चिन्तन व मनन की परिचायक है। 'दर्शन और विज्ञान' नामक पुस्तक मे भारतीय दर्शन और आधुनिक विज्ञान का तुलनात्मक व समीक्षात्मक विवेचन है जो अथ मे इति तक एक तटस्थ और गम्भीर अन्वेषण पर आधारित है।

लेखनी की तरह वाणी से भी आपने सर्वसाधारण को बहुत प्रकार से उपकृत किया है। नैतिक पुनरुत्थान मूलक अणुव्रत आन्दोलन के कार्य-क्रम को लेकर विगत ३ वर्षो मे आपने सहस्रो मीलो की पाद-यात्रा की है। आपके ओजस्वी भाषणो से मजदूर, विद्यार्थी, व्यापारी आदि सभी वर्गो मे नैतिक जागरण की एक नई लहर देखी गई है। विगत वर्ष ही नाना स्कूलो, कालिजो व अन्य शिक्षण केन्द्रो मे लगभग पचास हजार विद्यार्थियो को आपने सजीव नैतिक प्रेरणायें दी। बारह हजार विद्यार्थी तो अनैतिकताओ से बचने के लिये प्रतिज्ञाबद्ध भी हुए है। उसके साथ-साथ इसी अवधि मे आपने देहली, जयपुर, बम्बई आदि शहरो मे ससद (पार्लियामेन्ट) व विधान सभा के सदस्यो, राटरी क्लब आदि

अनेको अनुसन्धान व प्रशिक्षण केन्द्रो में आपके विशेप प्रवचन होते रहे है । आपके सानिध्य में आयोजित विचार परिषदो व अणुव्रत-आन्दोलन के अन्य कार्यक्रमो में स्वतन्त्र भारत के उप राष्ट्रपति सर राधाकृष्णन्, जी वी मावलकर, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, बम्बई के राज्यपाल श्री हरेकृष्ण महताव आदि गणमान्य व्यक्तियो ने समय-समय पर भाग लिया है । राष्ट्रपति श्री राजेन्द्र प्रसादजी, भारतवर्ष के सर्वोच्च न्यायाधीश श्री मेहरचन्द महाजन, भारत के प्रधान सेनापति एस एम श्री नागेश, उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री के० एम० मशी, वम्बई के मुख्यमन्त्री श्री मोरारजी देसाई तथा हिन्दी आयोग के अध्यक्ष श्री वी० जी० खेर आदि भी आप के साथ विचार विनिमय करने में रस लेते रहे हैं । दिल्ली से विहार करते समय आपके नैतिक जागरण के सार्वजनीन तथा सफल प्रयत्नो के उपलक्ष मे आपको केन्द्रीय भारत सेवक समाज, इन्टरनेशनल कल्चरल फार्म, दी हिन्दुस्तानी मर्कॅन्टाइल एसोसियेशन, अणुव्रत समिति, भारत जैन महामण्डल आदि प्रमुख सस्थाओ द्वारा एक सार्वजनिक समारोह मे उल्लेखनीय सम्मान मिला । उक्त आयोजन की अध्यक्षता राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन ने की तथा भारतीय ससद के उपाध्यक्ष श्री अनन्त शयनम आयगर, रेलवे मन्त्री श्री लाल वहादुर शास्त्री राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त, श्री वालकृष्ण शर्मा 'नवीन,' दिल्ली के मुख्य मन्त्री श्री ब्रह्मप्रकाश चौधरी आदि अनेको मान्य व्यक्तियो ने आपके पुनीत उपक्रम की मुक्त कण्ठ से सराहना करते हुए अनेको शुभ कामनाओ के के साथ आपको विदा दिया । आपकी उमर अब तक ३८ वर्ष की है । इस छोटी-सी अवधि मे आपने जो अनेको कार्यक्षमताये प्राप्त की है वह

मानना चाहिये आपकी बाल-दीक्षा का ही शुभ परिणाम है। आपकी दीक्षा का इतिहास भी बालदीक्षा सम्बन्धी नाना प्रश्नो तथा उलझनो पर प्रकाश डालने वाला है।

आपका जन्म सरदारशहर (राजस्थान) के एक सम्पन्न ओसवाल परिवार में हुआ। लगभग १४ वर्ष की उमर में एकाएक आपका ध्यान साधु-जीवन की ओर लगा। पाच महीने तक आप साधुचर्या की कठिनता और अपने आत्मबल को तोलते रहे, किसी से कहा तक नही। जब आपको पूर्ण आत्म विश्वास हो गया तब आपने अपने विचार घरवालो के सामने रखा। दीक्षा ग्रहण के विचार सुनते ही माता-पिता, भाई, बहिन व अन्य पारिवारिक जनो में विक्षोभ छा गया। आप चार भाइयो में कनिष्ठ थे इसीलिये माता-पिता का स्नेह आप पर अधिक था। आप की सगाई ३ वर्ष पूर्व ही एक सम्पन्न परिवार मे हो चुकी थी। पारिवारिक जनो ने मोहवश आपको बहुत कुछ समझाया। 'तु साधुना के विषय मे क्या समझता है ?' आदि बहुत सारे प्रश्न किये। साधुता के कष्टो का भय और गृहस्थ जीवन के भौतिक साधन-प्रसाधनो का प्रलोभन बताया। आपने अपनी उस छोटी अवस्था मे ही सब बातो का समुचित उत्तर दिया और अपने निश्चय पर आग्रहपूर्वक डटे रहे। आपके अभिभावक अत्यन्त धार्मिक थे फिर भी अपने मोहवश या आपकी परीक्षा के लिये आपको साधु-संसर्ग मे जाने से ही रोक दिया। कुछ दिनो बाद वे लोग आपको कलकत्ता जो उनका व्यवसायिक क्षेत्र था; ले गये। वहा पर दीक्षा की बात भुलवाने के लिये नित्य नये नाटक, सिनेमा, सर्कस आदि दिखाना, दर्शनीय स्थानो की सैर कराते कभी कभी नरम और गरम

होकर आपको समझाते पर आपका सकल्प ज्यो का त्यो रहा। जव कि एक तेरह वर्ष का बालक इतने प्रतिकूल और मोहक प्रयत्नो मे भी अपना सकल्प स्थिर रख सकता है तव यह सोचा ही कैसे जाता है कि वालक का निर्णय अपरिपक्व व भावावेश का ही परिणाम होता है। आठ महीने की कलकत्ता यात्रा के वाद आप पुन सरदारशहर आये। माता-पिता से अनुमति प्राप्त करने के लिये सत्याग्रह चलता रहा। पर दोनो में एक पक्ष भी किसी को समझाने मे सफल नही हुआ। तेरापथ मे माता-पिता आदि की आज्ञा के बिना दीक्षा होना तो दूर रहा, दीक्षार्थी की प्रार्थना पर कोई कान नही लगाता। लगभग ३ वर्ष तक आपकी उत्कट परीक्षा होती रही। आज्ञा प्राप्ति के लिये आपने आमरण अनशन तक की भी धमकी अपन अभिभावको को दे डाली। आखिर माता-पिता के समझ में यह आ गया कि इसके सस्कारो की प्रवल प्रेरणा है व किसी भी प्रकार से गृहस्थ जीवन मे नही रहेगा। तव समस्त पारिवारिक जनो ने मिलकर तेरापन्थ के अष्टमाचार्य श्री कालुराम जी स्वामी से आपको दीक्षा प्रदान करने का अनुरोध किया। आचार्यवर ने आपके सस्कारो का समुचित परीक्षण कर सम्वत् १९९१ माघ शुक्ला सप्तमी के दिन आपको भागवती जैन दीक्षा प्रदान की।

दीक्षा सस्कार के वाद शिक्षा व साधना के हेतु आचार्यवर ने आपको आचार्य श्री तुलसी को सौप दिया। लगभग सात वर्ष तक आप व्याकरण, न्याय, साहित्य, दर्शन आदि की वहां शिक्षा पाते रहे। २४ वर्ष की अवस्था में आपको अग्रगण्य का दायित्व मिला और उसके वाद जीवन में वहुमुखी विकास करते हुए आज आप इस स्थिति मे है।

'वालदीक्षा-विवेचन' पुस्तक का इस लिये भी एक विशेष महत्व है कि एक वालदीक्षित मुनि की लेखनी से लिखी गई है। पुस्तक में लिखी गई प्रत्येक वात के पीछे तर्क के साथ साथ अनुभव का भी आधार है।

आशा है, वालदीक्षा के विरोध मे उठाई हुई शकाओ का सफलतापूर्ण निराकरण इस प्रामाणिक पुस्तक के पठन तथा एक वालदीक्षित मुनि के जीवनवृत्त से हो जायगा। आध्यात्मिक चरम-विकास और समुन्नयन के लिये जीवन के प्राथमिक चरण में ही सन्यास-ग्रहण करना कितना प्रभावोत्पादक होता है, यह मुनिश्री के उत्तरोत्तर वैकासिक सन्यासी जीवन मे अवगत हो जायगा।

श्रीचन्द रामपुरिया

दिनाक १६।१२।५५

प्रवं० मत्री

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापथी महासभा

प्रकरण-पत्रिका

बाल दीक्षा

: एक विवेचन :

साधु-सस्कृति

इसमें कोई दो मत नही होगा कि भारतीय सस्कृति में साधु परम्परा का अनन्य स्थान रहा है। जिस आध्यात्मिकता, चरित्रबल और दार्शनिक उच्चता को लेकर भारतवर्ष का गौरव भूमडल में सर्वोन्नत हुआ, वह ऋषि, महर्षि व मुनि निर्ग्रंथो की ही देन थी। वे ही समय-समय पर भारत-वर्ष के गौरव में चार चाँद लगाते रहे है। भारतीय समाज-व्यवस्था व जीवन-प्रणाली के वे मेरु दड होकर रहे है। यद्यपि वे सन्यास आश्रम की उत्कट साधना मे अपना तपोमय जीवन व्यतीत करते थे, वही उन्हें बोधिलाभ होता था, पर उनके चरित्र-बल और ज्ञान-बल से समाज-व्यवस्था का प्रत्येक पहलू प्रभावित रहता था। परिवार धर्म, ग्राम धर्म से लेकर समग्र राजनीति, न्याय-व्यवस्था और शासन-तन्त्र उनकी वाणी को अपना मूल मन्त्र मान कर चलते थे। छत्रपति राजा और सम्राट् भी उन अकिञ्चन तपस्वियो की उपासना कर अपने आप को धन्य मानते थे। आगम, वेद, त्रिपिटक, रामायण, गीता व महाभारत आदि जो भारतीय सस्कृति के

प्राण ग्रथ है, कौन नही जानता वे सब ऋषि, महर्षि एव ज्ञानी-पुरुषो के मुख से निकली वाणी के पावन सकलन हैं। भारतीय जनता के लिए व समग्र विश्व के कल्याण के लिये उन्होने जो कुछ किया वह अनिर्वचनीय है। मानवता शेष रहते भारतीय जनता उसे भुला नही सकती।

साधु-सस्कृति का वर्चस्व—बालदीक्षा

आज देश के कोने-कोने मे आये दिन बाल-दीक्षा निषेध का प्रश्न उठता रहता है। कानून बना देने के लिये शासन व्यवस्थापको पर भी प्रभाव डाला जाता है। लगता है लोग एकान्तदृष्टि होकर बालदीक्षा के नाम पर समाज मे होने वाले यत्किञ्चित दुष्परिणामो को देख कर ही वैसा प्रयत्न करते है। पर वे इस पक्ष की ओर जरा भी ध्यान नही देते कि बालदीक्षा प्रतिबन्ध से शाश्वत काल से चली आने वाली साधु-सस्कृति पर कितना कठोर प्रहार कर रहे है, और स्वल्पतम दोष निवारण की उत्कठा में एक विराट क्षति को सामने ले रहे है। यह मनोवैज्ञानिक तथा वास्तविक तथ्य है। बालदीक्षा के अभाव मे साधु-सस्कृति निष्प्राण होने लग जाती है, उसका तेजस्व कपूर की तरह उडने लगता है। साधु जनो का प्रभाव व नेतृत्व समाज पर इसलिये तो है कि उनमें सुदीर्घ चरित्र-साधना और असाधारण शास्त्र-ज्ञान होता है। वे अपने ब्रह्मचर्य के अप्रतिम तेज से और वाणी के ओज से समाज का आध्यात्मिक नेतृत्व करते हुए उसे 'सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्', की ओर लिये चलते है। बालदीक्षा के अभाव में ऐसा सुदीर्घ चारित्र उनमें मिलेगा? २५ व ३० वर्ष की प्रौढ़ आयु में साधु बन कर अति गहन सूत्र व्याकरण, सुविस्तृत दर्शन शास्त्र

एव न्याय शास्त्र का अध्ययन कर मकेंगे ? क्या उनकी वाणी अगाध ज्ञान-मिन्धु के घोष को लेकर युवावस्था के रहते ओजस्विनी बन सकेगी ? यह कदापि सम्भव नही है ।

प्रश्न हो सकता है कि आज की साधु सस्कृति वैसी कहाँ जिसके वर्चस्व की चिन्ता करनी पडे। आज तो वह स्वय ही लडखडाती-सी एव तेजोहीन-सी दीख रही है परन्तु ऐसी वात नही है। इन शताब्दियो मे भी भारतवर्ष में आचार्य श्री भिक्षु, दयानन्द, विवेकानन्द, ज्ञानेश्वर, तुकाराम आदि अनेको प्रभावशाली सत व आचार्य हुए है, और आज भी अनेको तेजस्वी आचार्य तथा साधु विद्यमान हे। यह पहले भी नही था कि सवके सव ऋषि, मुनि विश्वामित्र, व्यास, वाल्मीकि, महावीर या वुद्ध जैसे होते थे। प्राचीन काल मे भी उक्त प्रकार की विभूतियाँ तो सहस्राब्दियो और शताब्दियो में एकाध ही हुआ करती थी, वैसी अव भी सम्भव है। अस्तु यह कहना कि आज की साधु-सस्कृति मे कोई प्रभावशाली विभूतियाँ है ही नही या उनकी सम्भावनायें भी मिट गई है—निरावार और मिथ्या है।

आज के युग में साधु-सस्कृति की विशेष आवश्यकता

लोग कहते है—युग वदल गया है, मानव जीवन की राजनैतिक, सामाजिक व आर्थिक व्यवस्थायें वदल गई है। दर्शन का युग—विज्ञान का युग हो गया है। इस युग में साधु-सस्कृति का कोई उपयोग व महत्व नही है। किन्तु स्थिति यह है कि निकटभूत के एक या दो दशको में वैज्ञानिक जगत के चिन्तन क्षेत्र में जो परिवर्तन आया, और विश्व के इस रगमच पर जो वडी घटनायें घटी वे सव मानव-समाज को सहस्रो वर्ष प्राचीन

दार्शनिक एव धार्मिक युग में ले जाती हैं। अहिंसा के आधार पर चालीस करोड भारतवासियो का स्वतंत्रता पाना, कोरिया व हिन्दचीन की युद्ध-सम्बन्धी समस्याओं का अहिंसा के आधार पर अन्त होना आदि वे घटनायें हैं जो हिंसा की ओर जाते हुए मानव प्रवाह को अहिंसा की ओर मोड देती हैं।

हमारा रहन-सहन का स्तर (Standard of Living) ऊँचा हो इस लक्ष्य को लेकर मानव समाज भोगवाद के समर्थक विज्ञान के पीछे पडा। विज्ञान ने भोग वृद्धि के नाना साधन प्रसाधन दिये पर अन्त में शान्ति और सुख के स्थान पर उसी विज्ञान ने एटम् बम्ब व हाइड्रोजन बम्ब के रूप में दो प्रलयकारी 'शम्भुनेत्र' खोल दिये और 'हिरोशिमा' और 'नागासाकी' पर उसकी (विज्ञान की) पहली नजर पडी। तबसे मनुष्य-जाति को यह होश होने लगा है कि सुख और शान्ति जडवाद के विकास में नहीं किन्तु मानवता के विकास में है।

विज्ञान इस नारे को लेकर आगे बढा—दार्शनिको ने आत्मा के विषय में जो कुछ कहा वह केवल कल्पना की ही उडान थी। आज आत्मा का अस्तित्व अनुभव एव प्रयोग से जरा भी सिद्ध नही हो रहा है। अतः आत्मवाद के आधार पर ऋषि-महर्षि एव दार्शनिको के युग मे जो कुछ कहा गया व अगाध साहित्य रचा गया, वह सब आज कोई महत्व नही रखता। इसी वैज्ञानिक क्षेत्र मे आज चारों ओर से एक स्वर में आत्मवाद का समर्थन होने लगा है। प्रो० अल्बर्ट आइन्स्टीन कहते है— [1]"मैं मानता

---

1 "I believe that intelligence is manifested throughout all nature"

(The Modern Review, July 1936)

हैं कि सारी प्रकृति में चेतनता काम कर रही है।" सर जेम्स जीन्स कहते हैं—"१ हम इस विश्व में इतने अजनवी व यो ही आ धँसने वाले नहीं हैं जैसे कि हम पहले सोचा करते थे।" वैज्ञानिक जे. वी. एस हेल्डन लिखते है—"२ सत्य यह है कि विश्व का मौलिक तत्व जड ही नही अपितु मन और चेतना है।" इसी प्रकार अब वहुत सारे वैज्ञानिक कहने लगे है,—"३ कुछ समय पूर्व तक वैज्ञानिक क्षेत्र में नास्तिक होना एक फैशन की बात समझी जाती थी, परन्तु आज जो आदमी अपनी नास्तिकता पर गर्व करता है उसे वुरा समझा जाता है। यह श्रेय विज्ञान को ही है।" अस्तु आधुनिक युग के ये ऐसे तथ्य है जो समस्त मानव-समाज को एकाएक हिंसा से अहिंसा की ओर, भोग से त्याग की ओर और जडवाद से आत्मवाद की ओर वलात् ले जाते हैं। आंखो के सामने पडी यवनिका हट जाती हैं

---

१. " ...We are not so much strangers or intruders as we at first thought"

(Mysterious Universe, P 138)

२ "The truth is that not matter but mind, personality is the central fact of the universe"

(The Modern Review, July 1936)

३ Not very long ago, it was to some extent fashionable in scientifice circles to be an Agnostic But to-day man who glories in his ignorance is flamed lionised Thanks to the labours of science

(Science and Religion, P 85-86)

और सहस्रो वर्ष पूर्व का दार्शनिक व धार्मिक युग लोगो के सामने आ जाता है। यह विशेष कर भारतवर्ष की विजय का स्वर्णिम युग है क्योकि वही अध्यात्मवाद, अहिंसा व त्याग की बातें आगे लेकर आज तक चलता रहा है। आज अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण मे इन्ही बातो को लेकर भारतवर्ष के प्रति एक अभिनव आकर्षण है। कौन नही जानता कि अहिंसा, आत्मवाद की जो विरासत भारतवर्ष को मिली हुई है, वह साधु-सस्कृति का ही परोपकार है। विरासत में मिली इसी महानिधि को विश्व के रग-मच पर लाकर महात्मा गाधी ने भारतवर्ष का गौरव उन्नत किया है। इस प्रकार सर्वागीण दृष्टिकोणो से सोचने से यह स्वय स्पष्ट हो जाता है कि सारे अहिंसा आदि आदर्शों की केन्द्र व जनयित्री साधु-सस्कृति उपेक्षा के योग्य नही है क्योकि आज तो पुन उसके निखरने का युग आया है।

साधु-संस्कृति की सामाजिक और राष्ट्रीय उपयोगिता

एक सच्चा साधु समाज का उपयोगी तत्व ही नही वह एक आलोक स्तम्भ होता है। वह अपनी वाणी से, अपने कर्म से कोटि-कोटि जनता को ऊँचे आदर्शों की ओर बढने की प्रेरणा देता है। उसकी वाणी मे प्रभाव होता है क्योकि जो वह जनता से करने को कहता है वह बात और उससे भी अगली बात उसके जीवन में होती है। भारतवर्ष के सस्कारो में तो साधु-सस्कृति का प्रभाव और भी विशेष है, जिसे स्वतन्त्र भारतवर्ष के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद इन शब्दो में स्वीकार करते हैं—"सदाचार और चरित्र को प्रोत्साहन देने का काम तो धर्मगुरुओ का ही हमेशा से रहा है और आज भी है। जितना असर धर्माचार्यो का चाहे वे किसी

भी धर्म या पथ के क्यो न हो लोगो पर पडता है उतना दूसरो का नही ।"
अस्तु आज जब कि देश में नैतिक और चारित्रिक बल घट रहा है, चोर-बाजारी, रिश्वत, मिलावट आदि अनगिनत भ्रष्टाचार पनप रहे है, साधु जनो की आवश्यकता और भी अधिक सामाजिक एव राष्ट्रीय महत्व रखती है। साधु लोग सचमुच ही इस विषय में असाधारण योगदान कर सकते है, क्योकि उन्हे धन, पद आदि का स्वार्थ नही होता और समय व शक्ति उनका साथ देते है। यह किससे अपरिचित है कि आज आचार्य श्री तुलसी एव उनके ६५० शिष्य साधुजन राजस्थान, पजाब, दिल्ली, सौराष्ट्र, बम्बई, मैसूर, मद्रास, उत्तर-प्रदेश, मध्यभारत, मध्य-प्रदेश, उडीसा आदि सुदूरस्थ प्रान्तो के गावो तथा नगरो में देश की कोटि-कोटि जनता को अणुव्रत आन्दोलन के रूप में नैतिक पुनरुत्थान की प्रखर प्रेरणा दे रहे है। यह एक उदाहरण है और भी सैकडो एव सहस्रो साधु-जन देश को तथा प्रकार की पुनीत सेवाये देते होगे इसमें कोई सन्देह नही। तब कौन सुहृदय व्यक्ति साधु सस्था की तथा प्रकार की सामाजिक एव राष्ट्रीय उपयोगिताओ से असहमत होगा।"

इस प्रकार से एक सर्वागीण विवेचन के बाद सम्भवत हरएक विचारक इस निर्णय पर पहुँचेगा कि आज के युग में साधु-सस्कृति जीवित रहे, इसमें भारतवर्ष का हित एव गौरव है। इससे अनायास यह तो मान ही लेना पडता है कि इस साधु-सस्कृति का महत्व एव वर्चस्व सुस्थिर रखने के हेतु उत्तम प्रकार के दीक्षार्थी बालको का उत्तम प्रकार के गुरुओं के हाथ दीक्षित होना सब प्रकार से श्रेयस्कर है।

वालकों को वैराग्य तथा ज्ञान

वाल दीक्षा के विषय में सवसे प्रमुख तर्क यह है कि एक दस या वारह वर्ष के वच्चे को ससार-त्याग या वैराग्य कैसे हो सकता है ? और उस अवस्था में दीक्षा जैसी कठिन वस्तु का उसे क्या ज्ञान होता है ? इस प्रश्न का उत्तर हमें इतिहास के पृष्ठो से मिलता है । वहाँ एक नही अनेको वालको के जीवन मिलेंगे जिन्होने विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया और ज्ञानी वालक कहलाये । अनेको वालको के चरित्र वहाँ मिलेंगे जिन्होंने अपने जीवन में अलौकिक वीरता के काम किये और वीर वालक कहलाये । अनेको वालक मिलेंगे जिन्होने वडे-वडे वुद्धिमानो को भी आश्चर्य में डालने वाले काम किये और वुद्धिमान वालक कहलाये । अनेको वालक मिलेंगे जिन्होंने भक्ति और वैराग्य निष्ठा में अप्रत्याशित दृढता दिखलाई और अपना नाम भक्त एव वैरागी वालको में लिखाया । दीक्षा जैसे दुरूह मार्ग पर भी वालकजन प्रौढो की तरह व उनसे भी अधिक अग्रसर हुए हैं और दीक्षा की आजीवन साधना में वे सर्वोत्तम सफल रहे है ।

ज्ञानी वालक

जैन परम्परा में जहाँ वडों की तरह वालको के लिये भी कैवल्य प्राप्ति और मोक्ष-प्राप्ति का विधान है उसी प्रकार वैदिक परम्परा में भी ऐसे वालको के अनेकों उदाहरण है जिन्होंने वाल्यकाल में सन्यास ही नहीं लिया अपितु उन्हें विशिष्ट वोधिज्ञान भी हुआ, जिनके सामने वडे-वडे ऋषि-महर्षि भी झुक गये थे । जावाल, श्वेतकेतु, नचिकेता, उपकोशल सुतन, अष्टीव, गमद, अष्टावक्र आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

वीर बालक

बालको की वीरता व दृढ़ता को लेकर क्या इतिहास को पढने वाले गुरु गोविन्द सिंह के पुत्र युगल की बात भूल सकते है ? जब कि औरगजेब बादशाह ने दोनो बालको से कहा––"तुम क्या स्वीकार करते हो ? मुसलमान होना या जिन्दे दीवार में चिने जाना ?" बालको ने निर्भयता से कहा—"दीवार में चिने जाना" और वे हँसते-हँसते दीवार में चिने गये ।

सन् १८५७ के गदर के समय की घटना है । हैदराबाद के समीप जैरापुर रियासत का राजा बहुत ही बाल्यावस्था में था । उसने अग्रेजो के साथ लडने के लिये अरब और रोहिला पठानो की एक फौज तैयार की थी । सन् १८५८ ई० की फरवरी मे वह अग्रेजो द्वारा पकड लिया गया । अग्रेज सैनिक अधिकारियो ने उससे दूसरे विप्लवकारियो के नाम बताने के लिये प्रलोभन बताया, और कहा––"तुम अपने साथियो के नाम बता दो तो तुम्हें हम यो ही छोड देंगे ।" बालक राजा ने गर्ज कर कहा—"मै तुम्हें साथियो के नाम नही बताऊँगा ।" अधिकारियो ने कहा—"इसका अर्थ तुम्हारे लिये मृत्युदण्ड है या कालापानी ।" बालक ने उसी निडर भाव से कहा—"मृत्यु या कालापानी मेरे लिये इतने भयकर नही है जितना विश्वासघात । आप मुझे अभी तोप के मुह पर खडा कर दीजिये । शाति से मृत्यु का इतजार करूंगा ।" आखिर बालक राजा को आजीवन कालापानी का दण्ड मिला पर वह कालेपानी की सजा से भी मृत्यु की सजा को अच्छा मानता था । इसलिये उसने अग्रेज पहरेदार की पिस्तौल उठा कर अपनेआप आत्महत्या कर ली ।[१]

---

१ Story of my life लेखक कर्नल मेटोज़ टेलर ।

क्या लोग भूल जाते हैं कि स्वतन्त्रता-संग्राम के विषय को लेकर गोलियाँ खाने के लिये जब बालकों ने सीने तान दिये थे। यह है उनकी वीरता की कथा। इस प्रकार के वीर बालकों की वीरता की कहानियाँ अनगिनित हैं। लवकुश, राजकुमार कुवलयाश्व, असुर बालक बर्बमक, वीर बालक अलकेन्द्र, स्कन्दगुप्त, बादल, छत्रशाल, दुर्गादास, पुत्त व पृथ्वीसिंह आदि वीर बालकों के नाम बहुजन विश्रुत हैं।

बुद्धिमान बालक

बुद्धि और विवेक के लिये बालक अभय कुमार का नाम अमर है। इतिहास प्रसिद्ध राजगृही के राजा श्रेणिक ने एक बुद्धिमान मन्त्री की खोज के लिये एक उपक्रम रचा। एक सुविस्तृत तालाब के बीच में एक स्तम्भ खड़ा किया, और कहा जो कोई बुद्धिमान व्यक्ति बिना तालाब में गये व बिना स्तम्भ के हाथ लगाये इस स्तम्भ को गांठ लगा कर बांध लेगा वही मेरा राज्य मन्त्री होगा। राजा तथा सहस्रों आदमी तालाब के चारों ओर एकत्रित थे। सब लोग अपने-अपने भाग्य की सुनहरी कल्पना कर दिमाग लड़ा रहे थे। किसी का कोई प्रयत्न सफल नहीं रहा। इस बीच में चौदह वर्ष का बालक अभय कुमार राजा के पास आया और बोला आपके वचनानुसार मैं स्तम्भ के गांठ लगा सकूंगा। राजा और अन्य सारे लोग उसकी इस बड़ी बात पर हँसने लगे। पर अभय कुमार ने राजा का आदेश पाकर एक बहुत लम्बी रस्सी जो कि तालाब के चारों ओर आ सकती हो मंगाई और उसका एक किनारा लेकर तालाब के किनारे वृक्ष की एक टहनी से बांध दिया। दूसरे किनारे को लेकर वह चला और सारे तालाब की परिक्रमा कर उसी वृक्ष के पास आया। अब स्तम्भ उसकी रस्सी के बीच

आ गया था। उसने वृक्ष की शाखा से रस्सी का पहला किनारा खोला और गाठ लगा कर दूसरा किनारा उसी शाखा से बाध दिया। रस्सी के एक किनारे को लेकर तालाब के आधे तक घुमा, और गाठ सरक कर खम्भे पर पहुँच गई। सब लोग उसकी बुद्धि पर आश्चर्य करने लगे और राजा ने प्रसन्न हो कर उसी दिन से उसे अपना राज्यमत्री नियुक्त किया।

इसी प्रकार बालक रोहक की चातुर्य कहानियाँ जैन कथा-साहित्य मे सुप्रसिद्ध हैं, जिन्हें पढकर किसी भी बुद्धिमान् को विस्मित होना पडता है।

सुप्रसिद्ध सम्राट् अकबर की सभा का सर्वश्रेष्ठ रत्न बीरबल भी पन्द्रह साल की उम्र मे नवरत्नो में एक रत्न नियुक्त हुआ। इससे पहले वह बिना मा-बाप का गरीब बालक था और ५०) रु० की अपनी पूजी से वह अपनी पान की दुकान चलाया करता था। एक दिन उसने अपनी बुद्धि का ऐसा परिचय दिया कि बादशाह ने प्रभावित होकर पनवाडी को अपने सभा के नवरत्नो में एक रत्न के रूप में नियुक्त कर दिया।

जोन स्टुवर्ट मिल एक विश्व प्रसिद्ध विद्वान हो गये हैं। इनका जन्म सन् १८०६ में इगलैंड में हुआ। इगलिश इनकी मातृ भाषा थी। ३ वर्ष की उम्र में ग्रीक भाषा का अभ्यास किया। 'इस्पाम फेवल्स' नामक पुस्तक भी उन्होने ३ वर्ष की उम्र मे अच्छी तरह से पढ ली थी। ४ से ७ वर्ष की उम्र तक इतिहास व गणित के कठिनतर ग्रथ पढ लिये थे। ८ वर्ष की उम्र मे लेटिन भाषा पढी और इसी उम्र में अध्यापन का कार्य शुरू कर दिया था। और भी ज्ञान के क्षेत्र मे नाना विलक्षण काम उन्होंने अपनी बाल्यावस्था में कर दिखाये थे। उनका यह मानना था—मेरा विद्याभ्यास स्वाभाविक हुआ है। यदि सब लडको को मेरे जैसा ही

वातावरण मिले तो मैं समझता हूँ अधिकाश लडके मेरी जितनी उम्र में मेरे जितना पढ सकेंगे ।१

श्री निवास रामानुजम् ए आर. एस (१८८७–१९२०), जो ससार के प्रसिद्ध गणिताचार्यों मे एक माने जाते है, जब तीसरी कक्षा में पढते थे तब बी ए में पढाये जाने वाले गणित प्रश्नो का अच्छी तरह समाधान करने लगे थे। बारह वर्ष की आयु मे त्रिकोणमिति सारी हल कर देना उनकी अलौकिक प्रतिभा का उदाहरण है। तेरह वर्ष की छोटी आयु में उन्होने गणित सम्बन्धी जो कार्य किया वह वडे-वडे गणिताचार्यो की सम्पूर्ण आयु की मौलिक खोजो के बराबर था।

अमेरिका की वयोला रोजीलेया ओलरिच नामक एक बालिका ने बुद्धिविकास का इतना असाधारण परिचय दिया कि देश के लोग उसे ससार की सबसे चतुर बालिका कहने लगे। दो वर्ष की अवस्था में यथा-विधि उसकी एक परीक्षा हुई। परीक्षको ने निर्णय किया कि अबतक वह तीन हजार वस्तुओं को नाम व आकृति से जानने व पहचानने लगी है। तीन वर्ष साढे तीन महीने की उम्र में उसने बहुत सुन्दरता के साथ टाइप करना सीख लिया था। उसके बाल्यजीवन में और भी अनेको विलक्षणतायें थी।

इस प्रकार आधुनिक इतिहास में भी ईश्वरचन्द, भारतेन्दु हरिश्चन्द, वाल्टर हेनरी डेविड आदि अनेको मेधावी बालको के नाम सुप्रसिद्ध है।

---

१ James & John Stuart Mill on education, P 74 के आधार पर।

भक्त बालक

भक्ति के क्षेत्र मे भी बालक पीछे रहने वाले कहाँ थे ? जैन परम्परा मे वडो की तरह वालको के लिये भी कैवल्य और मोक्ष प्राप्ति का विधान है। सनातन धर्म में भी ऐसे बहुत से वालको की जीवन-कथा है जिन्होने वचपन में ही अपने उत्कट लग्न और तीव्र अध्यवसाय से ईश्वर दर्शन व ईष्ट दर्शन पाये, व अपने भक्तिवल का अलौकिक परिचय दे जनता को आश्चर्यचकित किया। उनमें से कुछ उल्लेखनीय नाम ये है—राजकुमार सुधन्वा, भक्त सुव्रत, वालक चन्द्रहास, नारद, शुकदेव, मार्कण्डेय, राज कुमार भद्राउ, भक्त श्री कर गोप, त्यागी भक्त गोपीचन्द्र, भक्त वालक गोविन्द, धन्नाजाट आदि। इन भक्त वालको मे वहुत सारे ऐसे है जिन्होने वचपन से ही सन्यास-जीवन व्यतीत किया है।

वालको की तरह भक्त वालिकाओ का भी एक प्रामाणिक इतिहास मिलता है। शिव भक्ता सिमन्तिनी, मीरावाई, करमैति वाई, वहिन सरस्वती, भक्ति मति चन्द्रलेखा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन सवको पाँच और दस वर्प के वीच मे जो धुन लगी वह जीवन भर लगी रही। उनमें मे कुछ को परमात्म साक्षात्कार हुआ ऐसा वैष्णव धर्म-परम्परा मे माना जाता है। मीरा का विपपान भी अमृतपान हुआ यह तो आवाल प्रसिद्ध है ही।

वाल दीक्षित साधु और उनका प्रभावशाली जीवन

वाल दीक्षित साधुओ का इतिहास तो और भी सुविस्तृत है। प्रह्लाद की भक्ति और ध्रुव की तपस्या तथा नचिकेता की मृत्यु-भीति आज भारत वासियो के मुख-मुख से गाई जाती है। जैन सस्कृति में भी वालदीक्षित

साधुओं की एक लम्बी परम्परा है। मुनि गज सुकुमाल की सहनशीलता और कैवल्य-प्राप्ति, भृगुपुत्र द्वय की अडिग वैराग्य-निष्ठा, तथा अतिमुक्तक मुनि की मोक्षाराधना आज किसी विज्ञ जैनी से अपरिचित नही है। और कौन नही जानता कि इन भव्यात्माओ ने लगभग नव-नव व दस-दस वर्ष की उम्र में दीक्षा ग्रहण कर अपनी अनूठी आत्मशक्ति का परिचय दिया।

बालको का वैराग्य केवल सतयुग की ही कहानी नही है, इस कलियुग कहे जाने वाले समय मे भी और इस वर्तमान सहस्राब्दी में भी अनेक बालक हो चुके है जिन्होने बचपन मे ही सन्यास दीक्षा लेकर अपने ज्ञान व चरित्र का असाधारण विकास किया। विश्व-कल्याण की दृष्टि से अनेको ग्रंथ बनाये, बडे-बडे शास्त्रार्थ किये, आचार्य बने और कोटि-कोटि पुरुषो का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर महापुरुष कहलाये।

हेमचन्द्राचार्य ने नव वर्ष की उम्र में जैन दीक्षा ली, २१ वर्ष की उम्र में आचार्य बन गये और उन्होने अपने जीवन मे धर्म, दर्शन, साहित्य, व्याकरण आदि विषयों को लेकर सैकडो विशाल ग्रंथ बनाये, जिन सब की श्लोक संख्या साढे तीन करोड है। उनके एक-एक ग्रंथ भी ८०-८० हजार श्लोक संख्या के हैं। आज वे कलिकाल सर्वज्ञ के नाम से सर्वविदित है।

शंकराचार्य ने आठ वर्ष की अल्पावस्था में माता-पिता को छोड कर सन्यास लिया। ३२ वर्ष की उनकी समग्र उम्र थी। इस बीच में उन्होंने कितना अध्ययन किया, कितने ग्रंथ बनाये, कितने शास्त्रार्थ किये, कितना परिभ्रमण किया यह इतिहास के पृष्ठो पर आज भी अंकित है।

रामानुजाचार्य के गुरु यामुनाचार्य अपने बचपन मे ही विरक्त हुए और शास्त्रों का अगाध अभ्यास किया। यह ११वीं शताब्दी के

प्रथम चरण की घटना है। उन दिनो पाण्डय राज्य की राजसभा में विद्वज्जन 'कोलाहल' नामक एक दिग्वजियी पडित रहते थे। उन्होने अपने देश के सैकडो सहस्रो पण्डितो को पराजित किया था, और राजाज्ञा के अनुसार उनसे वे कर लेते थे। यह सब देखकर यामुनाचार्य का स्वाभिमान जाग उठा, और राजसभा में जाकर विद्वज्जन 'कोलाहल' पडित से राजा की मध्यस्थता में शास्त्रार्थ किया। शास्त्रार्थ में यामुनाचार्य की अखड विजय हुई। उस समय उनकी उम्र केवल बारह वर्ष की थी।

श्री माध्वाचार्य ने ११ वर्ष की उम्र में ही अद्वैत मत के आचार्य अच्युत पक्ष के पास दीक्षा ग्रहण की। कहा जाता है इससे पूर्व अपने पिता के पास वेद आदि समग्र ग्रथो का अध्ययन कर लिये थे। ११ वर्ष की उम्र में वे इतने तार्किक थे कि गुरु जो उन्हे पढाते वे अपने स्वतन्त्र अध्ययन के आधार पर उसका तर्कपूर्ण खडन करते। आगे चल कर उन्होने बडे-बडे शास्त्रार्थ किये। तथा गीता, भाष्य, वेदान्त, सूत्र भाष्य आदि बडे-बडे ग्रथ रचे।

रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य आदि और भी अनेको आचार्य हुए हैं, जिन्होने बाल्यावस्था में दीक्षित होकर जीवन मे बहुत बडा प्रभाव पैदा किया।

लोगो का यह कहना भी उचित नही है कि ऐसे प्रभावशाली आचार्य आजकल तो नही देखे जाते जिन्होने बाल्यकाल मे दीक्षा ली हो और देश के लिये बहुत कुछ किया हो व कर रहे हों।

उपाध्याय यशोविजयजी का नाम भी असाधारण कोटि के विद्वानो में एक है। जैनाचार्यो मे ये नव्य न्याय के प्रणेता माने जाते हैं। उनके

लिये कहा जाता है एक बार वे अपनी माता के साथ उपाश्रय गये। वहाँ माता के साथ आचार्य श्री नयविजयजी के मुख से समग्र भक्तामर सुना। माता को नित्य भक्तामर श्रवण का नियम था। पर वर्षा के कारण से वह दूसरे दिन वहाँ न जा सकी। भक्तामर श्रवण के पूर्व वह खाना नही खा सकती थी। मेधावी बालक यशोविजय ने कहा—'भक्तामर श्रवण से ही यदि तुम्हारा नियम पलता है तो वह तो मैं भी करा सकता हूँ।' बालक यशोविजय ने समग्र भक्तामर का अस्खलित पाठ कर बताया। कुछ दिन बाद माता यशोविजय को लेकर नयविजयजी के पास गई और उनके सामने यशोविजय ने भक्तामर का पाठ कराया।

दश वर्ष की उम्र में उनकी दीक्षा हुई। गुरु सान्निध्य से बहुत प्रकार का विद्याभ्यास किया। युवावस्था में विनयविजयजी के साथ विशेष विद्याभ्यास के लिये काशी गये। कहा जाता है वहा उन्हें एक अलभ्य ग्रंथ केवल एकदिन के लिये पठनार्थ मिला। उन्होंने एक ही दिन में उस ग्रंथ के १२००'शार्दूल विक्रीडित' श्लोक याद कर लिये। शेष जीवन-काल में उन्होंने संस्कृत, प्राकृत, गुजराती मारवाड़ी, आदि भाषाओं में अत्यन्त महत्वपूर्ण सैकड़ों ग्रंथ लिखे।

श्रीमद् जयाचार्य तेरापंथ के चतुर्थ अधिनेता थे। उनका जन्म राजस्थान के 'रोयट' ग्राम में हुआ और ९ वर्ष की अवस्था में उन्होंने दीक्षा ग्रहण की। लगभग इसी जीवन में उन्होंने कविता और ग्रंथ रचना करनी शुरू कर दी थी और अपने जीवन में साढ़े तीन लाख पद्यों की नवीन रचना की। उन्होंने तेरापंथ साधु-संस्था के लिये बहुत सारी मर्यादाएँ बनाईं, इसलिये वे

तेरापथ के व्यवस्थापक आचार्य कहलाये। उनका स्वर्गवास विक्रम स० १९३९ में जयपुर में हुआ।

आचार्य श्री तुलसी ने, जिनके गरिमापूर्ण व्यक्तित्व से आज जन-जन परिचित है, स्वय ११ वर्ष की उम्र मे दीक्षा ग्रहण की है। दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् १० वर्षो में ही उन्होने बहुत सारे विपयो का प्रगाढ अध्ययन कर लिया था। २१००० श्लोक तो उस अवधि में उन्होने कठस्थ कर लिये थे। वे भी हेमचन्द्राचार्य की तरह अपनी २२ वर्प की उम्र मे वृहत्तर साधुसघ के एकमात्र आचार्य बने है। आज वे लगभग ४० वर्प की अवस्था में है और विगत ५ वर्षों मे आप "अणुव्रत आन्दोलन" का सचालन कर रहे है।

इस प्रकार जब सहस्रो वर्प पूर्व से लेकर आज तक के इतिहास में बालको की गौरवगाथा हम पढते हैं तब यह प्रश्न अधिक महत्व का नही रह जाता कि बालक क्या समझते हैं? उन्हें वैराग्य कैसे होता है? और बाल दीक्षा मे क्या लाभ हैं?

आज किसी भी विपय के समर्थन में इतिहास व वर्तमान के उदाहरण ही पर्याप्त नही माने जाते अपितु एक यौक्तिक समाधान की आवश्यकता रहती है। बालक दीक्षा के विपय मे क्या समझता है? इस प्रश्न से यह प्रति प्रश्न पैदा होता है कि उसे दीक्षा के विपय में क्या-क्या समझना चाहिये। यह कैसे माना जा सकता है कि एक १६ वर्प का बालक कुछ नही समझ सकता और १८ वर्प का सब कुछ समझ लेता है। वास्तविकता तो यह है कि समझने की पूर्णता तो न १८ वर्प में है और न ८० वर्प में। किन्तु जीवन का व्यवहार्य मार्ग यह है कि जिस कार्य के करने को व्यक्ति समुद्यत होता है

कम से कम उसके हिताहित को मोटे रूप में समझ ले। एक १४ व १६ वर्ष का वालक भलीभाँति समझ सकता है कि साधु होने के नाते मुझे साधु जीवन की इन-इन कठिनाइयो का सामना करना होगा। वह अपने आप को तौल भी सकता है कि मैं इन कठिनाइयो में चल सकूगा या नही। अपने मनोवल व आत्म-विश्वास के साथ उस मार्ग पर चलने का दृढ सकल्प ही कर सकता है। यह जरा भी अस्वाभाविक नही है। पितामह भीष्म ने अपनी कुमारावस्था में ही आजीवन ब्रह्मचारी रहने का सकल्प किया था आचार्य विनोवाभावे ने भी अपनी दश वर्ष की उम्र में आजीवन ब्रह्मचर्य पालने का सकल्प किया था।

पूर्व जन्म संस्कार

वालक को वैराग्य होने में पूर्व जन्म का सस्कार मूलभूत कारणो में एक है। पूर्व जन्म के सस्कार की वात नास्तिको के सामने कोई महत्व नही रखती तो आस्तिको में इस वात पर कोई दोमत भी नही हो सकता। आत्मा की शाश्वता और पुर्नजन्म में विश्वास रखनेवालो को सस्कार की वात माननी ही पडती है। उसी पुर्नजन्म के सस्कार के कारण वालक में साधु होने की एक तीव्र भावना पैदा होती है, उस समय तक उसमें अन्य विषयो का ज्ञान चाहे थोडा ही क्यो न हो। सस्कारो से ही उसे साधु-चर्या के कठोर परिषह को सहन करने की शक्ति मिलती है, नही तो क्या कोई कल्पना कर सकता है कि एक सुकुमार वालक शान्ति व धैर्य से वैठ कर स्वेच्छापूर्वक अपना केश लुचन करा सकेगा, अथवा तथा प्रकार के अन्यान्य कष्टो को कष्ट न मानकर सह सकेगा ?

एक २५ और ३० वर्ष का हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति भी जहा लुचन के कष्ट

को नही सह सकता और एक बालक उसे हँसता-हँसता सह लेता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि उस बालक मे अवश्य कोई असाधारणता है।

सस्कारो की बात केवल शास्त्रीय ही नही किन्तु मनोवैज्ञानिक भी है। बहुत सारे बालक अत्यन्त बचपन में ही अपने जीवन का विषय चुन लेते है। वह चुनाव बुद्धिपर्क नही रुचि (सस्कार) पर्क होता है। कुछ बालक आरम्भ से सगीत की ओर झुकते देखे जाते है। इन उक्त विषयो में उनकी रुचि लगती है इतनी ही बात नही किन्तु विलक्षण सफलता भी उन्हें मिलती है जो समान श्रेणी के बालको को नही मिलती। ऐसी स्थिति में किसी बालक का आध्यात्मिकता की ओर झुकना भी अस्वाभाविक नही है।

आज यह सर्वसम्मति-सा तथ्य हो गया है कि बालक की रुचि देख कर उसे उसी विषय में लगाना चाहिये, ताकि वह उस विषय में असाधारण कोटि तक पहुँच सके। शिक्षित माता-पिता शिक्षाधिकारी एव शासक लोग इस विषय में एकमत है और बालको को इसी आधार पर आगे बढने का अवसर देते है। तब फिर केवल दीक्षा के विषय को लेकर ही बालक की सास्कारिक एव स्वाभाविक रुचि पर प्रहार क्यो किया जाता है ?

कानून व्यवस्था मे

जब बाल दीक्षा पर राजकीय प्रतिबन्ध की बात सामने आती है तो बालक सम्बन्धी कानून व्यवस्था को भी देख लेना आवश्यक होता है। वहाँ यह माना गया है कि ६ वर्ष तक बच्चा किसी भी सजा का अधिकारी नही है। ७ से १२ वर्ष तक के बच्चे दो श्रेणियो में विभक्त है। एक श्रेणी के सजा के पात्र नही है, दूसरी के है। न्यायाधीश को यह देखना होगा कि

अमुक वच्चे से अपराध अनायास हुआ है या उसने जान वूझ कर किया है। अनायास अपराध करने वाला सजा का पात्र नही है और जान वूझ कर अपराव करने वाला वरावर सजा का पात्र है और वारह वर्ष से ऊपर का अपराधी तो सजा पात्र है ही१। यहाँ यह देखना है कि जव न्याय-व्यवस्था वुरे काम के लिये उसे सजा देती है तो अच्छे काम करने की छूट वालको को अपने आप हो जाती है। एक नावालिग वच्चा मृत्यु-दण्ड पाये ऐसा दोप समझपूर्वक कर सकता है तो दीक्षा ग्रहण करने के योग्य कैसे नही कहा जा सकता ? वहाँ यह प्रश्न क्यो उठता है कि वच्चा क्या समझता है ? कानून व्यवस्था व धार्मिक दीक्षा का विधान वहुत कुछ समान-सा लगता है। जहाँ ९ वर्ष से पूर्व दीक्षा नही दी जाती ऐसी जैनधर्म की व्यवस्था है वहाँ कानून में ७ से १२ तक वैकल्पिक अपराधी माना गया है। इस सहज सुन्दरता को नष्ट करने की वात क्यो सोची जाती है, यह एक कौतुहल का विषय है। हमें मानना चाहिये धर्माचार्यो व कानून प्रणेताओ ने वालक के लिये जो विधान किये है वे यो ही नही, उनके नीचे भी मनोवैज्ञानिकता का यथार्थ आधार है।

---

1 Nothing is an offence which is done by a child under seven years of age

(Indian Penal Code, Sec 82)

Nothing is an offence which is done by a child above seven years of age and under twelve, who has not attained sufficient maturity of understanding to judge of the nature and consequences of his conduct on that occasion.

(Indian Penal Code, Sec 83)

दीक्षा क्या है ?

लगता है दीक्षा लेने को कुछ आवश्यकता से अधिक गम्भीर रूप दिया गया व दिया जा रहा है और इसी आधार पर जनता को उसके पक्ष-विपक्ष की बातें गम्भीरतम बना कर बताई जाती है। दीक्षा है क्या ? व्यक्ति प्रतिज्ञायें लेता है—

१—मैं आजीवन अहिंसा का पालन करूंगा।

२—मैं आजीवन सत्य बोलूंगा।

३—मैं आजीवन किसी की चोरी नही करूंगा।

४—मैं आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा।

५—मैं धन, मकान आदि के रूप में किसी प्रकार का परिग्रह नही रखूंगा।

यह है भागवती जैन दीक्षा। जो साधारणतया अन्य सन्यास दीक्षाओ से कठिन मानी जाती है। आश्चर्य की बात यह है कि यदि कोई बालक मैं चोरी नही करूंगा, मैं सत्य बोलूंगा, एक-एक स्फुट रूप से ऐसी प्रतिज्ञाये लेता है तो उसमें किसी को विरोध नही होता अपितु हरएक व्यक्ति कहेगा कि ऐसी प्रतिज्ञायें तो प्रत्येक बालक को लेनी चाहिये। तब फिर कोई बालक दीक्षा के नाम से पांच प्रतिज्ञाओ को लेता है तो विरोध क्यो ?

साधु गुलाम या दास नही है

बाल दीक्षा में जो लोग अनर्थ देखते है उनकी एक तर्क यह है कि बालक भावावेश में आकर दीक्षा ले तो लेता है और फिर उसे निभाने का मन नही रहता तब भी घुट-घुट कर उसे वही अपना जीवन पूरा करना पडता है। यह आरोप नितात मिथ्या है। दीक्षा लेने वाला स्वेच्छा से दीक्षा लेता है और स्वेच्छा से ही उसे निभाता है। दीक्षा लेने वाला कोई दास

या गुलाम नही वन जाता कि वह वहाँ से अलग नही हो सकता। साधु सम्प्रदाय में तो धर्म शासन चलता है। वापिस जाने वाले के लिये वहाँ कोई वर-पकड नही होती। न तो साधु सघ का ऐसा कोई नियम होता है कि जिसकी इच्छा दीक्षा पालने की नही है वह भी वहाँ से जा नही सकता और न ऐसा कोई राजकीय व सामाजिक प्रतिवन्ध है कि दीक्षा लेने के वाद पुन. वहाँ से कोई आ नही सकता।

एक तटस्थ तथा गहरी दृष्टि से विषय की तह तक पहुँचने से परिस्थिति स्पष्ट हो जाती है। कोई वालक स्वेच्छा से इस धर्म शासन में प्रविष्ट होता है और स्वेच्छा से ही वह वहाँ रहता है। दीक्षा पालन की अनिच्छा होने पर कोई दवाव व वल प्रयोग नही है तो वालदीक्षा विरोध की समस्त तर्कें हतप्रभ हो जाती है। जो लोग कहते हैं कि वालदीक्षा ववंरता है, सामाजिक अनिष्ट है, मानवता का अपमान है, उसका कोई आधार नही रहता।

यह वात ठीक है कि व्रत ले करके उनसे स्खलित होना वुरा है। इससे भी तो यह नही माना जा सकता कि इसमें कोई सामाजिक अनिष्ट होता है। जहाँ तक सोचा जाता है वालदीक्षा के विरोधियो की आपत्ति भी सामाजिक अनिष्ट को लेकर है न कि किसी के व्रत-पतन की वात पर। इसलिये समाज-सुधार के नाम पर वालदीक्षा-विरोध का नारा एक गड्डरी प्रवाह होता है न कि विचार प्रवाह।

९ व १८ की मर्यादा

दीक्षा ग्रहण में आयु की कुछ मर्यादा हो इसमें कोई दो मत नही है। प्रश्न रहता है कि वह मर्यादा क्या हो ? इस विषय में धर्मशास्त्रो की मर्यादा

ही प्रामाणिक एव यथार्थ हो सकती है। धर्म-शास्त्र प्रामाणिक एव महापुरुषो के वनाये हुए है। दूसरी वात यह विषय उनके अधिकार का है। दीक्षा क्या है और उसको वहन करने का सामर्थ्य कम-से-कम कितनी आयु के वालक में आ सकता है उसका ज्ञान भगवान महावीर को हो सकता है न कि 'कार्लमार्क्स' को ? यह नितात आध्यात्मिक विषय है और इसे सोचने वैठे नितात भूतवादी या अर्धभूतवादी। यह विषय के साथ न्याय नही होगा। ऐसे विषय धर्म-शास्त्रो पर व धर्माचार्यों पर छोड देने के होते हैं। जैन दीक्षा के विषय को तो भगवान श्री महावीर ने सदिग्ध रखा ही नही है। उन्होने तो स्थान-स्थान पर दीक्षा के विषय मे स्पष्ट विधान कर दिये है—"नही कल्पता है निर्ग्रन्थ साधु और साध्वी को ८ वर्ष से कम उम्र वाले लडके व लडकी को दीक्षा देना[१]। "कल्पता है निर्ग्रन्थ साधु व साध्वी को ८ वर्ष से कुछ अधिक अवस्था के वालक व वालिका को दीक्षा देना[२]।" एक वार प्रमुख शिष्य श्री गौतम स्वामी ने भगवान श्री महावीर से पूछा, भगवन्! कितनी आयु में व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त कर सकता है ? भगवान श्री महावीर ने वताया—"कम से कम कुछ अधिक ८ वर्ष में भी मोक्ष को प्राप्त कर सकता है[३]।" यहा यह देखना है कि ८ वर्ष के वालक में

१—नो कप्पइ निग्गन्थाण वा निग्गन्थिण वा खुड्डुगस्स वा खुड्डियाए वा उणट्ठवास जायं उठ्ठावित्त एवा।

२—कप्पइ निग्गन्थाणं व निग्गन्थिण वा खुड्डुगस्स वा खुड्डियाए वा साइरेग अट्ठवास जायं उवट्ठावित्त एवा।

(व्यवहार सूत्र उ १०, गाथा १९-२०)

३—जीवाण भन्ते! कयरं मियाडए सिज्झन्ति ? गोयमा! जहणेणं साइरेग अठठवासा उए. ..... सिज्झन्ति।

ही कितनी शक्ति का उदय हो सकता है। उस समय तक वह दीक्षा तो क्या कैवल्य प्राप्त करने का और मोक्ष प्राप्त करने तक का अधिकारी है। हो सकता है कुछ लोग इन बातो मे विश्वास न रखे, पर यह तो उचित नही है कि सारी दुनिया को बलात् अपने विचारो पर चलायें। धार्मिक स्वतन्त्रता जनतत्र देशो का गौरव है। धार्मिक स्वतन्त्रता का अर्थ है प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने विश्वासो के आधार पर धर्म साधना करे। यह काम शासन-व्यवस्था का तो नही होगा कि जो धर्म जिस प्रकार से धर्म साधना का विधान करे उस पर प्रतिविधान और करना। यदि बालक के लिये उसके धर्मशास्त्र ८ वर्ष में दीक्षा लेने का विधान करते है और सहस्रो में कोई बालक स्वेच्छा से इस साधना पर जाता है तो उसे कानून से रोकना कहा तक सगत है, यह एक दृष्टि है।

भगवान महावीर की मर्यादा को भी गलत बताने वाले व उन्हें असर्वज्ञ मानने वालो की भी कमी नही है, पर ध्यान रखना चाहिये ऐसा मानने वाले स्वय भी तो सर्वज्ञ नही है ? कुछ भी हो दीक्षा वस्तु के विषय में महावीर स्वामी से अधिक अधिकारी सम्भवत. कोई भी विचारक अपने आपको नही मानेगा।

तर्क यह है कि आजकल के व्यवहार मे १८ वर्ष की उम्र एक अभिमत मर्यादा है। आज की न्याय-व्यवस्था के अनुसार इस अवस्था में प्राय सभी अधिकार मिल जाते है। यह ठीक है। बहुत से विषय को लेकर जीवन के व्यावहारिक ज्ञान की यह एक सामान्य मर्यादा है। पर यहा यह नही भूलना चाहिये कि न्याय व्यवस्था में बहुत सारे कार्यों के लिये १८ वर्ष मे पूर्व भी व्यक्ति को जिम्मेदार माना है और कुछ बातो को लेकर

१८ वर्ष की उम्र में भी व्यक्ति को अधिकारी नही माना गया है। उदाहरणार्थ—विवाह जीवन का एक वडे-से-बडा प्रश्न है। इसके लिये भी एक १५ वर्ष की वालिका को पूर्ण योग्य माना गया है। जव एक २५ वर्ष की वालिका विवाह कर सकती है जिसमें कि उसे इतना वडा निर्णय कर लेना पडता है कि एक ही व्यक्ति के साथ जीवन भर के लिये उसके जीवन की कडी जुड जाती है। वह चाहे क्रूर है, अकर्मण्य है व दुर्व्यसनी है परन्तु वह उसे छोड नही सकती, जहा कि जीवन भर के लिये पति द्वारा उसे यातना हो सकती है। कानून भी अवतक उसका वचाव नही करता है। घुट-घुट कर जो अपना जीवन पूरा करती है फिर भी उसे १५ वर्ष की उम्र में विवाह सम्बन्धी निर्णय के योग्य माना। एक ओर जिस दीक्षा में वही १५ वर्ष की वालिका स्वेच्छा से आती है, स्वेच्छा से वहा रहती है और यदि वह स्वेच्छा से दीक्षा छोडती है तो उस पर यत्र या कानून का कोई दवाव नही है। फिर भी उसे १५ वर्ष तक की उम्र में दीक्षा के योग्य न मानना कहा तक न्यायसगत है ?

विवाह और दीक्षा की स्थितियो का सतुलन करने से तो ऐसा लगेगा कि विवाह जैसे कठिन सदिग्ध निर्णय के लिये जो उम्र उपयुक्त मानी जाय, दीक्षा जैसे ऐच्छिक विपय के लिये तो उससे काफी कम उम्र भी पर्याप्त मानी जा सकती है।

इस प्रकार न्याय व्यवस्था के अन्तर्गत और भी वहुत से कार्य है जिनके लिये १८ वर्ष से अल्प उम्र में व्यक्ति को योग्य वैध माना गया है और उस पर १८ वर्ष का नियम लागू नही किया है। भारतीय वालिग अवस्था विधेयक में वताया गया है—(धारा २)—१८ वर्ष की वालिग अवस्था के

नियम का निम्न वातो पर असर नही पडेगा—विवाह, दहेज, तलाक व गोद के सम्बन्ध में किसी व्यक्ति की योग्यता पर१। इसी प्रकार वहुत से कार्य ऐसे है जिनके लिये १८ वर्ष की अवस्था को भी पर्याप्त नही माना गया है। भारतीय विधान के अनुसार जन्मजात भारतीय को भी २१ वर्ष से पहले मतदान का अधिकार नही मिलता है। २५ वर्ष की उम्र में वह लोकसभा (House of the People) के लिये उम्मीदवार वन सकता है, तथा ३० वर्ष में राज्य सभा (Council of State) के लिये उम्मीदवार वन सकता है२। ऐसी स्थिति में दीक्षा की ९ वर्ष की एक लम्वी परम्परा को जो धर्मशास्त्रो से समर्थित है तोडकर १८ वर्ष का ही आग्रह रखना केवल आग्रह ही रह जाता है।

१८ वर्ष की उम्र धार्मिक विषयो पर लागू नही

दीक्षा के सम्बन्ध में १८ वर्ष की अवस्था का आग्रह शास्त्रीय दृष्टि से ही भूल भरा नही, लेकिन कानून की दृष्टि से भी वह निर्मूल ठहरता है। "भारतीय वालिग अवस्था विधेयक" जहाँ वालिग अवस्था के लिये १८ वर्ष का नियमन करता है वही वह यह भी घोषित करता है—"यह विधेयक

---

1 Nothing herein contained shall offect
(a) The capacity of any person to act in the following matters (namely), marriage, dower, divorce, and adoption
(The Indian Majority, Act Sec 2)

2 Is, in the case of a seat in the Council of States, not less than thirty years of age and, in the case of a seat in the House of the People, not less than twenty-five years of age
(The Constitution of India Article 84 (b)

भारतीय प्रजा के किसी भी वर्ग के धर्म और उनके धार्मिक आचार व्यवहार व रीति-रिवाजो पर लागू नही पडता१ ।" इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कानून व्यवस्था में भी १८ वर्ष से कम उम्र वाले बालक को दीक्षा व किसी भी धर्माचरण के लिये योग्य माना है व छूट दी है ।

वैदिक धर्म मे

वैदिक धर्म में सामान्यतया चार आश्रमो की परिकल्पना की गई है । उसके अनुसार हरएक व्यक्ति क्रमश ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और सन्यास आश्रम मे चले यह व्यवस्था हैं । यह एक सामान्य मर्यादा है । इसमें बहुत प्रकार के अवान्तर विधान भी हैं—जैसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी के विषय में बताया गया है कि जो ब्रह्मचारी वेद पढने में प्रसन्न और गुरु के अधीन तथा गुरु का हितकारी होता है तथा आजीवन गुरु के पास निवास करता है उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहते हैं२ ।" "उस नैष्ठिक ब्रह्मचारी को विवाह और सन्यास नही जो आलस्य रहित होकर इस विधि से शरीर छोडता है जिससे उस ब्रह्मचारी का पृथ्वी पर फिर जन्म नही होता३ ।" उसके आचार के

---

1 Nothing herein contained shall offect
(a) The religion or religious rites and usages of any class of Her Majesty's Subject in India
(The Indian majority Act.)

२–वेद स्वीकरणेहृष्टो गुर्वधीनो गुरोर्हित ।
निष्ठातश्चैव योगच्छे नैष्ठिक स उदाहृत ॥
(विष्णु स्मृति अ १, श्लोक २४)

३–न विवाहो न संन्यासो, नैष्ठिकस्य विधीयते ।
इमं यो विधिमास्थाय त्यजेद्देह मतंद्रित. ॥१४ (हारीतस्मृति अ ३)
नेह भूयोऽपि जायेत ब्रह्मचारी दृढव्रत । १५ ,,

विपय में वताया गया है कि—"जिसकी जिह्वा, लिंग, इन्द्रिय, उदर और हाथ भलीभाँति वश में रहते हैं वह ब्राह्मण सन्यास की प्रतिज्ञा को करके ब्रह्मचारी के आचरण से यहा ही अपनी आयु के शेप समय को व्यतीत करे। यदि आचार्य न हो तो उसके पुत्र और पुत्र के न होने पर उसके शिष्य के निकट और शिष्य भी न हो तो गुरू के कुल में रहकर जीवन विताये।"१

यह नैष्ठिक ब्रह्मचारी की व्यवस्था है जो सन्यास से भिन्न होने पर भी एक प्रकार का सन्यास ही है। ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय रहता हुआ आजीवन गुरुकुल वास करे, वैदिक संन्यास में फिर क्या घटता रहता है। वैदिक धर्म में उपनयन की अवस्था ८ वर्ष की मानी गई और इसी से आरम्भ होकर आजीवन उक्त साधना से नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहता है। इसका तात्पर्य हो जाता है कि जैनधर्म की तरह वैदिकधर्म में भी दीक्षा की अवस्था लगभग ८ वर्ष ही है। और वैदिक व्यवस्था में तो यह और अधिकता हो जाती है कि उक्त साधना का आरम्भ ८ वर्प से ही करना पडता है। जैन दीक्षा ८ या ९ से भी हो सकती है और नैष्ठिक ब्रह्मचारिता ८ से ही होती है। आजकल के सामान्य व्यवहार मे ८ वर्ष से ही दीक्षा हो यह आग्रह ही नही है तो अल्प अवस्था में कोई दीक्षा हो ही नही, यह आग्रह भी क्यो ?

नैष्ठिक ब्रह्मचारी को दीक्षित की कोटि में न भी माना जाय तो भी

१—यस्यैतानि सुगुप्तानि जिह्वोपस्थोदरकर ।
सन्यास समयं कृत्वा ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यया ॥१३॥
तस्मिन्नेव नयेत्कालमाचार्ये यावदायुषम् ।
तदभावे च तत्पुत्रे तच्छिष्येऽप्यथवा कुले ॥१४॥

संन्यास आश्रम मे जाने के लिये वैदिकधर्म के अनुसार व्यक्ति सदा स्वतन्त्र है। जो बालक ब्रह्मचर्याश्रम से सीधे संन्यास आश्रम में आये हैं उनका आना अपवाद रूप नही है अपितु विधानानुकूल है। विष्णुपुराण में लिखा गया है "तदनन्तर उपनयन सस्कार हो जाने पर गुरु-गृह मे रहकर विधि पूर्वक विद्याध्ययन करे (१२)। हे भूपाल! फिर विद्याध्यन कर चुकने पर गुरु को दक्षिणा देकर यदि गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की इच्छा हो तो विवाह कर ले (१३)। या दृढ सकल्पपूर्वक नैष्ठिक ब्रह्मचर्य गहण कर गुरु अथवा गुरु-पुत्रो की सुश्रूपा करता रहे (१४)। अथवा अपनी इच्छानुसार वानप्रस्थ या सन्यास ग्रहण कर ले। हे राजन्! पहले जैसा सकल्प किया हो वैसा ही करे१ (१५)।"

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दूधर्म मे बालदीक्षा आपवादिक नही अपितु वैधानिक है। यह बात हम आज ही सोचने लगे है यह भी नही है। बहुत प्राचीन काल में भी क्रमिक आश्रम व्यवस्था का स्पष्टीकरण हो चुका है। 'निर्णय सिन्धु' नामक ग्रथ में अनेक विपयो की छान-बीन करते हुए संन्यास के सम्बन्ध में भी लिखा गया है कि याज्ञवल्क

१–ततोऽनन्तर सस्कारसस्कृतो गुरुवेश्मनि।
यथोक्तविधिमाश्रित्य कुर्याद्विद्यापरिग्रह ॥१२
गृहीतविद्यो गुरवे दत्त्वा च गुरुदक्षिणाम्।
गार्हस्थ्यमिच्छन्भूपाल! कुर्याद्दारपरिग्रहम् ॥१३
ब्रह्मचर्येण वा कालं कुर्यात्सकल्पपूर्वकम्।
गुरोश्शुश्रूषण कुर्यात्तत्पुत्रादेर थापि वा ॥१४
वैखानसो वापि भवेत्परिव्राज्य वेच्छया।
पूर्वं सकल्पितं यादृक् तादृक्कुर्यान्नराधिप ॥१५

की व्यवस्था समुच्चय पक्ष में है 'सततदाश्रम समुच्चये पक्षे'। अन्य पक्ष जावाल श्रुति में वर्णित है। "यदि अन्यथा देखे अर्थात् उत्कट वैराग्य हो तो ब्रह्मचर्य से ही संन्यास ग्रहण करे वा गृहस्थाश्रम से वा वानप्रस्थाश्रम से सन्यासाश्रम में गमन करे अथवा जिस दिन वैराग्य उत्पन्न हो उसी दिन सन्यास लेना चाहिये फिर चाहे वह व्रती हो, अव्रती हो, स्नातक हो या अस्नातक हो, नष्ट अग्नि हो या अग्निहोत्री हो१।" अगिरा में इसी भावना को इन शब्दो में दुहराया गया है—"ब्रह्मचर्य से संन्यास ले, गृहस्थ से सन्यास तो, वानप्रस्थ से सन्यास ले, आतुर दु खित मनुष्य भी सन्यास ग्रहण करे २। इस प्रकार अन्यान्य दक्ष स्मृति आदि ग्रथो में भी योग्य बालदीक्षा का पर्याप्त समर्थन मिलता है। प्रह्लाद ने तो दैत्य कुलोत्पन्न असुर बालको को उपदेश दिया—"यह मत मानो हम धर्म साधना कैसे करें हम अभी बालक हैं। जरा, यौवन, जन्म, मरण आदि धर्म तो देह के है। आत्मा के नही। मभी देहो में देही (आत्मा) शाश्वत है ३। इत्यादि प्रकरणो से भली-भाति हो जाता है कि आश्रम-व्यवस्था अनिवार्य नही ऐच्छिक है, जो ब्रह्मचर्य से सीधा सन्यास में न जाये उनके लिये है। अस्तु, शास्त्रीय प्रसग

१–जावाल श्रुतौ त्वन्येऽपि पक्षाउक्ता। यदि चेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत् गृहाद्वनाद्वा। अथ पुनरव्रती वा स्नातको वास्नातको वोत्सन्नाग्निकोवायदहरेव विरजेत्त दहरेव प्रव्रजेत्। इति।

२–प्रव्रजेद् ब्रह्मचर्याद्वा प्रव्रजेद्वा गृहादपि।
वनाद्वा प्रव्रजेद्विद्वान्ना तुरोवाथ दु खितः।

३–मा जानीत वयबाला देहीदेहेषु शाश्वत।
जरा यौवन जन्माद्या धर्मदिहस्यनात्मन.।

को प्रस्तुत पुस्तक में अधिक विस्तृत नही करना है क्योकि आज जो बालदीक्षा का विरोध है वह किसी शास्त्रीय मतभेद पर नही है।

अब समस्या यह रहती है कि शास्त्रो के अनुसार कमसे कम ८ या १० वर्ष की अल्पतम दीक्षा मर्यादा ठहरती है और आज कुछ लोग उसे १८ तक ले जाना चाहते है दोनो का सामजस्य कैसे हो ? रस्सी को जितना खीचा जाता है तनाव बढता है। एक तटस्थ भावना से सोचा जाना चाहिये ८ वर्ष की अल्पतम शास्त्रीय मर्यादा के रहते भी आज कल ८, १०, १२ वर्ष तक की भी दीक्षाये विशेपत सुनने या देखने मे नही आती है, न किसी ने ऐसी दीक्षाओ के प्रामाणिक आकडे अब तक जनता के सामने रखे है। १३ से १५ वर्ष तक की भी विरली ही दीक्षायें किसी समाज मे होती होगी। शेप कही जाने वाली बाल दीक्षायें १५ व १८ के बीच की रहती है। केवल उनके लिये इतना आग्रहपूर्ण दृष्टिकोण कि वे कानून से भी बन्द हो कहा तक यथार्थ है। इस आग्रह की नीव वहा ठहरती है कि १८ वर्ष का व्यक्ति तो योग्य हो ही जायेगा और इससे पूर्व १७, १६, १५ वर्ष का कोई बालक योग्य हो ही नही सकेगा।

योग्य बालदीक्षा के समर्थक उस उलझन को इस प्रकार सोचते है—दीक्षा का मान दड योग्यता हो। जो व्यक्ति दीक्षा के योग्य न हो वह चाहे १८ वर्ष का हो चाहे ८० वर्ष का, उसको दीक्षा न हो और यदि कोई बालक १८ से कम उमर मे भी योग्यता-प्राप्त हो तो उनकी दीक्षा होनी चाहिये। अत ९ व १८ के बीच यही समुचित सामजस्य है कि दीक्षा का मूलभूत मानदड योग्यता हो न कि १८ व २८ की वय।

अयोग्य बालदीक्षा

वहुत सारे विचारक मानते हैं——जिस वालक के सस्कार हो, अपनी तीव्र भावना से वह दीक्षित होना चाहता हो, जिसके माता-पिता विवेकपूर्वक उसे सहर्ष आज्ञा देते हो, उसकी दीक्षा किसी योग्य गुरु के पास हो उसमें हमारा विरोध नही है। ऐसे वालक तो देश व समाज के लिये एक वहु-मूल्य निधि सिद्ध होते हैं। परन्तु आज कल ऐसी दीक्षायें भी देखी जाती हैं जहा विना माता-पिता की आज्ञा के ही साधु लोग वालको को उडा ले जाते हैं और मूड लेते है, पता चलने पर वहुत वार झगडे भी होते हैं। कुछ लोग तो यहाँ तक निर्दयता करते हैं कि वच्चो को अगहीन वना कर उन्हे भिक्षा मागने का पेशा सिखलाते है। कुछ गुरु लोग अपने भक्तो से माता-पिता को द्रव्य दिलवा कर उनके वच्चो को दीक्षा देते है, तो कुछ भोले वच्चो को नाना प्रकार के प्रलोभन दिखला कर वहकावे में डालते है। ऐंसी दीक्षायें समाज के लिये अभिशाप हैं और खास कर ऐसी दीक्षाओ से ही हम असहमत हैं।

ऐसे विचारक सत्य एव यथार्थता से परे नही है। लगता तो यह है कि वाल्दीक्षा का समस्त विरोध ही उक्त प्रकार की अयोग्य वाल-दीक्षाओ को लेकर खडा हुआ है। सच वात तो यह है कि उक्त प्रकार के अवैध प्रयत्नो से होनेवाली तथा कथित दीक्षा, दीक्षा है ही नही, वह तो चोरी और डकैती जैसा ही कार्य है। ऐसी दीक्षाओ के लिये किसी विचारक का समर्थन नही हो सकता। पर ध्यान रखने की वात यह है कि ऐसी अयोग्य दीक्षाओ के साथ-साथ शास्त्रीय विधि एव ऊँचे आध्यात्मिक आदर्शों पर होने वाली कतिपय योग्य वालदीक्षाये भी प्रतिवन्ध में न आ जायें।

यह ठीक है किसी भी उच्चादर्श की छाया में बहुत सारे पाप जमा हो जाते है। साधु के वेष में बहुत सारे ठग व धूर्त भी अपना व्यवसाय चलाते हैं। सच्चे व्यवसायी का रूप बना कर बहुत सारे दम्भी दुनिया को धोखा देते हैं। धार्मिको के नाम पर बहुत सारे अधार्मिक, भक्तो के नाम पर बहुत सारे अभक्त और सज्जनो के नाम पर बहुत सारे दुर्जन दुनिया में चलते रहते हैं। पर आदर्शों की छाया में जमा होने वाले पापो को नष्ट करना है न कि आदर्श को ? यदि योग्य बालदीक्षा के नाम पर बहुत सारे अनाचार फैल गये है तो उन अनाचारो को नष्ट करना है न कि योग्य बालदीक्षा के आदर्श को ?

जीवन व्यवहार के हरएक पहलू में अच्छाई के साथ-साथ बुराई रहती है। लाखो-करोडो आदमी आज देश में व्यवमाय करते है। उनमें ऐसे लोग भी बहुत है, जो मिलावट, झूठा-तौल माप व चोरबाजारी करते है, बिक्रीकर, आयकर व मृत्युकर की चोरी करते है, अपने गरीब भाइयो का उसी व्यवमाय के नाम पर सीमातीत शोपण करते हैं फिर भी ऐसा प्रस्ताव अभी तक नही आया है कि व्यापार के नाम पर ये ये अनाचार होते है इसलिये व्यापार मात्र ही बन्द कर देना चाहिये, किसी को व्यापारी होने की सुविधा नही मिलनी चाहिये। अपितु यही सोचा जाता है व्यापार और व्यापार में आनेवाली बुराइयो का अन्त होना चाहिये।

सहस्रो व लाखो लोग राज कर्मचारी है और कौन नही जानता उनमे ऐसे भी बहुत हैं जो लञ्चा (रिश्वत) लेते है, जानबूझ कर किसी के साथ अन्याय भी करते है और अपने कर्त्तव्य का भी पूरा-पूरा पालन नहीं करते तो भी उनके सुधार की सोची जाती है न कि उस वर्ग विशेप को मिटा देने

की। जीवन के प्रत्येक पहलू में जब यही न्याय है तो बाल-दीक्षा के विषय में ही उसकी उपेक्षा क्यो ? वहाँ भी बुराइयाँ रोकी जानी चाहिये न कि समग्र बालदीक्षा ?

कानून की व्यापकता एक उपयोगिता

बालदीक्षा न हो इस विषय मे जो कानून की कल्पना की जाती है उसकी भी व्यापकता एव उपयोगिता क्या है यह यहा सोच लेना आवश्यक है। इस विषय में प्रथम तो यह देखना होगा कि एक देश या एक प्रान्त में प्रतिवर्ष कितनी प्रतिशत बाल व प्रौढ दीक्षाये होती है। सम्भवत बम्बई जैसे ४ करोड आबादी वाले सुविस्तृत प्रान्त में भी जैन सनातन आदि सभी धर्मों की मिल कर सौ (१००) से अधिक दीक्षाये नही होती होगी जो चार लाख आदमियो के पीछे १ पडती है। उन सौ दीक्षाओ में भी अधिक से अधिक १०, २० बाल दीक्षायें होती होगी। उन १०, २० में भी लोगो की धारणा के अनुसार आधी से ज्यादा ऐसी होती है जिनमें पूर्वोक्त प्रकार के अनुचित तरीके काम मे लाये जाते हैं। अब सोचना है ऐसी बाल दीक्षाये जो माता-पिता की आज्ञा के बिना, व प्रलोभन आदि से बलात दी जाती हैं उनके लिये तो आज तक के बने हुए कानून भी पर्याप्त रोक करते है। ऐसी स्थिति में 'बाल सन्यास दीक्षा प्रतिबन्धक कानून' की परिधि अधिक से अधिक चार करोड आदमियो मे ५ व १० उन बालको तक सीमित रहती है जो स्वेच्छा से, अपने सस्कारो से और माता-पिता की आज्ञा लेकर शास्त्रीय विधि के साथ दीक्षित होना चाहते है।

इस प्रकार कुछ धैर्य व शान्ति से बाल संन्यास दीक्षा प्रतिबबन्धक प्रस्तावो की विचिकित्सा होती है तो सहज ही यह तत्त्व निकलता है "फोडा

पहाड और निकली चुहिया ।" तथाप्रकार के प्रस्ताव दोनो ओर से व्यर्थ सिद्ध होते हैं। जो अयोग्य बाल दीक्षायें अवैध तरीको से होती है उन्हें रोकने के लिये तो वह इसलिये व्यर्थ है कि वर्तमान न्याय-व्यवस्था में भी उसके पूरक कानून पहले से बने पडे है। दूसरे पक्ष में तो ऐसे प्रस्ताव व्यर्थ ही नही एक समुचित आदर्श पर घातक प्रहार करते हैं।

यदि यह भी माना जाय कि ४ करोड आदमियो में जो पाच व दस बालको की दीक्षा होती है वह भी समाज के लिये एक अभिशाप है और उसे रोकना हमारा कर्त्तव्य है तो यह तर्क नितान्त निष्प्राण व निकम्मा है। जब कि आज प्रत्येक प्रातीय शासन व्यवस्था के सामने बडी-से-बडी समस्याओ का पुलिन्दा पडा है उनमें से बडी-बडी उलझी हुई गुत्थियो के पडे रहते एक ५, १० धागे की गुत्थी को हाथ में लेकर समय बिताना कहा तक श्रेयस्कर माना जा सकता है। आज ग्रामो में और शहरो में सहस्रो सहस्र बालक द्रव्याभाव से अशिक्षित रहते है व अकर्मण्य होकर इधर-उधर भटकते है। आज लाखो आदमी बेकारी के काल मे फसे हुए मछली की तरह छटपटा रहे हैं। आज सैंकडो व सहस्रो बालक भीखमगी का पेशा सीख रहे हैं, और सडको पर वे घरबार पडे हुए अपने जीवन की घडिया पूरी करते हैं। उन सब को सम्भालने के लिये तो प्रान्तीय शासन व्यवस्थाओ को अवकाश ही नही मिल पाया है कि लोग ४ करोड आदमियो में ५, १० बालक स्वेच्छा से सुख-दुख की परवाह न करते हुए माता-पिता को सतुष्ट कर अपने पुण्य मार्ग पर आगे बढना चाहते हैं उन्हे रोकने का कानून बना देने के लिये उसे विवश करते हैं।

आश्चर्य तो यह है कि ऐसे लोगो का ध्यान समग्र देश मे चल रही वेश्या-

वृत्ति पर तो नही पडा, जिसके कारण कि कितनी वालिकाओ का जीवन भ्रष्ट हो रहा है, कितनी पतिव्रताओ का जीवन दुर्व्यसनी पतियो के कारण तिल-तिल कर के विदग्ध होता जाता है, और कितने युवक अपने जीवन की वहुमूल्य शारीरिक एव मानसिक शक्तियो को होम कर अपने लिये नारकीय जीवन उपस्थित कर रहे है, और उनका ध्यान वाल दीक्षा पर पडा। अस्तु, जो लोग वाल दीक्षा मात्र को ही वुरी मानते हैं उनके लिये भी समाज में उस सुवार से पूर्व प्राथमिकता पाने योग्य वहुत सारे कार्य पडे है; अपेक्षा है निर्वाचन दृष्टि तीव्र हो।

शासक व अधिकारी व्यक्तियो का तो कर्त्तव्य है ही कि वे ऐसे प्रस्तावो पर समय व शक्ति लगाने से पूर्व उनकी व्यापकता एव उपयोगिता पर एक गम्भीर मनन करें।

इसी प्रकार का प्रस्ताव अव से पूर्व तक वीकानेर, जोधपुर, उदयपुर, वम्वई, वडौदा व यू पी आदि प्रान्तो व स्टेटो में विभिन्न व्यक्तियो द्वारा रखा गया। किन्तु केवल वडौदा स्टेट को छोड कर और सभी राज्य व्यवस्थाओ ने यह अनावश्यक समझ कर अस्वीकृत कर दिया।

आज यह सर्वमान्य नारा है कि सुधार हृदय परिवर्तन में है न कि एकाएक कानून गढ देने में। वहुत सारे कानन वन गये हैं पर वे फलित नही हुए इसीलिये कि जन-जन के हृदय में परिवर्तन नही आया। अस्पृश्यता स्वतन्त्र भारतवर्ष के विधान मे एक अपराध घोपित कर दी गई है फिर भी उसे फलित होने में जितने वर्प लगने को है वे लगेगें ही। मिलावट, चोरवाजारी, रिश्वत, झूठा तोल-माप आदि किस प्रान्त में कानून से वन्द नही है? पर वे किम प्रान्त में नही चलते? आय कर, विक्री कर,

आदि की चोरी कहाँ वर्जित नही है ? और कहाँ नही होती ? इसका तात्पर्य यह नही कि शासन-व्यवस्था को चलाने के लिये कानून जरूरी नही है। परन्तु तात्पर्य यह होता है कि सुधारक एव शासक वर्ग को यह समझ कर नही चलना चाहिये कि कानून बना दिया व सुधार हो गया।

सुधार के विषय में आज के विचारको का सर्व मान्य दृष्टिकोण यह है कि जनतान्त्रिक समाज में हर एक सुधार कानून पर नही छोड कर जनता पर ही छोडना चाहिये ताकि उसमें स्वय एक जागृति पैदा हो और धीरे-धीरे वह आगे बढ़े। वही सुधार वास्तविक सुधार होता है। जनता के जीवन को कानून की नाना शृंखलाओ से जकड कर उसे एक मशीन के पुर्जे की तरह बना देना जनतन्त्र व्यवस्था नही कहलाती।

बालदीक्षा का भी एक ऐसा ही प्रसग है जो सुधारक व शासक जन इसे अयथार्थ मानकर इसका अन्त चाहते है, उनके लिये भी ऐसी तुच्छ बातो के लिये कानून के रास्ते पर जाना कहा तक सगत है, यह एक चिन्तन का विषय है।

बालक भावुक होते है

एक तर्क यह है कि बालक भावुक होते है अत साधुओ के वातावरण मे आकर वह उनकी प्रभावशाली वाणी से प्रभावित होकर भावावेश में दीक्षा के लिये तैयार हो जाते है। उन्हें कोई ज्ञानपूर्वक वैराग नही होता। बालक भावुक ही होते है यह कहना निराधार है। योग्य दीक्षाओ के विषय मे बहुधा यह देखा जाता है कि माता-पिता अपने मोह-वश उनका ध्यान गृहस्थ जीवन में लगाने के लिये नाना प्रयत्न करते है, प्रलोभन देते है, डाट फटकार बताते है और नाना युक्तियो से उन्हें समझाते

हैं, फिर भी उनका दिल वैराग्य से हटता नही। वहुत से वैरागियो को उनके माता-पिता वम्बई, कलकत्ता आदि स्थानो में साधुओ से दूर वातावरण में ले जाते है। नाटक, सिनेमा आदि दिखलाते हैं व खाने, पीने, शैर करने मे उनको विलमाना चाहते है। वर्षों तक प्रयत्न चलता है फिर भी वे बालक सकल्प से जरा भी हटते नही और अन्त में माता-पिता से सहर्ष सम्मति प्राप्त कर वे दीक्षा ले लेते है। यदि बालक भावावेश में स्वर्ग, मोक्ष के प्रलोभनो में आकर ही वैरागी बनते व उनके ऊपर साधु-जनो के उपदेश का केवल वालोचित प्रभाव रहता तो वे कदापि इतनी परीक्षाओ में टिक नही सकते। यह निर्विवाद है कि कोई भी बालक साधु-जनो के वातावरण में अधिक से अधिक दो चार घटे रहता है व माता-पिता के सम्पर्क में २० घटे। साधुजनो के साथ तो उसका एक प्रारम्भिक परिचय होता है और माता-पिता के साथ एक नैसर्गिक मोह। ऐसी स्थिति में यह कसे माना जाय कि साधुजनो ने तो अपने दो अक्षरो से ही उसकी भावुकता के कारण उसे अपनी ओर खीच लिया व माता-पिता सौ-सौ वार चाहते हुए भी उसका लाभ नही उठा सके।

स्वर्ग और मोक्ष के प्रलोभनो से ही विना कुछ समझे वह उधर खीच जाता हो यह भी अयथार्थ है। क्योकि स्वर्ग और मोक्ष के प्रलोभन वहुत दूर के होते है और माता-पिता जो उसे खाने-पीने व ऐश-आराम के प्रलो-भन देते है वे प्रत्यक्ष। यदि बालक वालोचित वुद्धि से ही दोनो प्रलोभनो मे से एक को चुनेगा तो वह स्वर्ग नही मिनेमा देखना चाहेगा।

इन सारी स्थितियो को विचारने से सहज ही हरएक विचारक इस निर्णय पर पहुँचेगा कि बालक के दीक्षा-ग्रहण में भावावेश व प्रलोभन हेतु

नही होते हैं। भावावेश की स्थिति भी क्षणिक होती है पर दीक्षा लेने वाले योग्य बालक तो जीवन भर साधु-चर्या की कठिन साधनाओ को जीवन का आनन्द मान कर चलते रहते हैं।

बालक को ससार का अनुभव नही

यह भी एक आग्रह है कि बालक को ससार का कुछ भी अनुभव नही होता और दीक्षा लेने वाले को ससार का अनुभव करके ही दीक्षा लेनी चाहिये। जो यह जानता ही नही कि सामाजिक जीवन कैसा है, और वह उसका त्याग करे यह यथार्थ नहो है। इसी तर्क को कुछ लोग यहा तक आगे बढा दिया करते हैं, कि जिसने जिस बात का अनुभव नही किया उसे उस विषय में उपदेश व त्याग करने का भी अधिकार नही है। ये सब ऐसी बाते हैं जिनका शाब्दिक दिखावा तो एक बार अच्छा लगता है पर उनके नीचे विचारकता का आधार नही होता। यहा देखना यह चाहिये कि दीक्षा लेनेवाला लेता क्या है। वह यही तो व्रत लेता है कि 'मै हिंसा नही करूँगा, असत्य नही बोलूगा।' क्या उसे हिंसा करके व असत्य बोल कर इन बातो का पहले अनुभव करना चाहिये ? यदि ऐसा हो तो समाज की सारी व्यवस्था ही भ्रष्ट हो जाती है। जो मद्य का परित्याग करता है उसे पहले मद्य पीकर अनुभव करना होगा ? व जो वेश्या व परस्त्री गमन का त्याग करता है उसे वैसा करके अनुभव करना होगा ? यह कदापि उचित नही है। चतुरता इसमें नही होती कि पहले कपडे को स्याही से पोते और फिर उसे साफ करे परन्तु चतुरता इसमे है कि कपडे को स्याही लगने ही न दे।

अनुभव वालक को नही होता और वयस्क को सब वातो का अनुभव हो जाता है यह भी एक भ्राति है। अनुभव की क्या सीमा ? मनुष्य अपने सारे जीवन मे भी जितना अनुभव कर पाता है उससे असख्य गुना वाकी रहता है। जितना अनुभव जीवन मे सम्भव होता है वह भी अपने अपने विषय में होता है। एक व्यापारजीवी को मजदूर जीवन का क्या अनुभव ? एक डाक्टर को इजीनियर जीवन का क्या अनुभव ? एक ग्रामीण को साहित्यक जीवन का क्या अनुभव ? इस प्रकार जो यह कहते है कि वाल-दीक्षित को सामाजिक जीवन का क्या अनुभव उन्हे यह भी सोचना चाहिये कि एक गृहस्थ को व उन्हे स्वय सन्यास-जीवन का क्या अनुभव ?

बालक की अपराध-क्षमता

वालक मे वुरी शक्ति का उदय भी अच्छी शक्ति के अस्तित्व को प्रमाणित करता है। १८ वर्ष तक के वालक वडे-वडे अपराध कर डालते हैं। न्याय-व्यवस्था में सात वर्ष से वारह वर्ष तक के वालक के लिये वैकल्पिक दण्ड व्यवस्था है, और १२ से १८ तक निर्विकल्पिक। कुछ देशो में वाल अपरावो के विपय को लेकर सरकार को स्वतन्त्र न्यायालय व्यवस्था करनी पडी है। न्यूयार्क की घटना है कि एक १४ वर्षीय वालक ने एक दूसरे सवयस्क वालक को धोले दोपहर वाजार के वीच वन्दूक चला कर मार डाला। मारने वाला लडका पकडा गया, घटना की जाच आगे वढी तो पता चला कि गुडा वालको की दो टोलिया शहर में काम कर रही है। उनका काम है चोरी, डकैती, छुरेवाजी व तथा प्रकार की

अन्य शैतानिया। उक्त दोनो टोलियो में कुछ दिनो से परस्पर झगडा चल रहा था। उसी के परिणाम स्वरूप एक टोली के वालक सरदार ने दूसरी टोली के सरदार को मार डाला है१।

ऐमा पश्चिम के देशो में ही होता है, यह वात नही है। भारतवर्ष के एक छोटे से प्रान्त सौराष्ट्र को ही हम क्यो न ले२। विगत ५ वर्षो में ही ४६५७ वालक व ३८६ वालिकाये अपराधी के रूप में कोर्ट मे हाजिर किये गये हैं।

कुछ ही वर्ष पूर्व की वात है, आगुल (उडीसा) के एक लडके ने तो ढोंग खडा करने में गजव ही ढा दिया। समाचार पत्रो मे प्रकाशित समाचारो के अनुसार वहाँ लगभग ५० लाख आदमी कुछ ही सप्ताहो मे पहुँच गये। उसकी चमत्कारपूर्ण औषधि की चर्चा सारे भारतवर्ष में फैल गई। अन्तिम परिणाम यह निकला कि उस लडके के पास सजीवनी औषधि नही थी, उसने तो कुछ आदमियो मे मिलकर ही झूठ का किला खडा किया था।

इस विषय में बालको के अपरावो का व उनके कुत्सित कौशल का विस्तारपूर्वक विवेचन हो तो एक आश्चर्यकारक उदाहरणो का ग्रंथ वन जाता है। अव देखना यह है कि जव वालक वडे-मे-वडा दुष्कर्म कर सकता है तो सत्कर्म क्यो नही कर सकता ? दुष्कर्म के लिये यदि उसमें साहस, वुद्धि व सामर्थ्य आ सकते है तो सत्कर्म के लिये क्यो नही ?

१—"वालगुनेगारी समाज ने सतावतो जटिल कोयडो" नामक लेख से
लेखक—श्री केशव लाल म शाह, B A, L-L B

२—जन्मभूमि प्रवासी—ता० २८—१०—५५ सोमवार।

सुख-दु ख मन का माना होता है

कुछ लोग साधु-जीवन की कठोर त्यागमय-साधना को याद कर के ही वालदीक्षा का विरोध करते हैं। एक सुकुमार बालक और यह लुचन, पादविहार आदि के नाना कष्ट—यही बातें उनके हृदय में एक मोह पैदा कर देती है। पर सोचना यह चाहिये कि सुख-दु ख मन का माना ही होता है। जहा हृष्ट-पुष्ट और वडी उम्र वाले उन कष्टो को सुन-करके ही सिहर उठते हैं वहा वे सुकुमार बालक उन कष्टो को भी सुख मानकर हँसते-हँसते सह लेते है। यह अपने-अपने रस का व धुन का विषय है। जिस व्यक्ति के धन कमाने की धुन लगती है वह धूप, छाह, भूख, प्यास की परवाह नही करता। माता, पिता, स्त्री व पुत्रो को छोड समुद्रो पार चला जाता है। जिन वालको को अपने आत्म-कल्याण का रस लग जाता है उनके लिये साधुचर्या के कष्ट कुछ कष्ट हैं ही नही। यही कारण है कि वे जीवन भर उसमें सहर्ष चलते हैं।

यदि हम अपने चिन्तन की अपेक्षा बदल लेते है तो स्थिति यह हो जाती है कि कष्टो और व्यथाओ का धाम गृहस्थ-जीवन है न कि साधु जीवन। एक ज्ञानी की दृष्टि मे गृहस्थ जीवन मे सुख है कहा ? वहा तो एक ही व्यक्ति के जीवन में आज भयकर गरीवी का दु ख है, आज पुत्राभाव का दु ख है, तो आज सगे सम्वन्धी की मृत्यु का। साधु-जीवन तो उन सव आधि-व्याधियो से मुक्त है, वहा तो मानसिक प्रशान्ति का समग्र उदय होता है। इसलिये समझना चाहिये कि गृहस्थ के सामाजिक जीवन से निकल कर साधु जीवन में आनेवाला योग्य वालक नाना आधि-व्याधियो से निकल कर शान्ति के पथ पर अग्रसर हो रहा है।

क्या शकराचार्य व हेमचन्द्राचार्य अपवाद रूप थे ?

वाल-दीक्षा का विरोध चाहनेवाले कहा करते है कि वाल-दीक्षा के समर्थको के पास शकराचार्य व हेमचन्द्राचार्य ये दो नाम है जिन्हे कि अपने पक्ष समर्थन के लिये पुन पुन आगे रखते है। क्या सभी वाल दीक्षा लेने वाले शकराचार्य व हेमचन्द्राचार्य हो सकते हैं ? वे स्वय ही अपवाद-स्वरूप हो गये है। उक्त अभिमत का निराकरण यह है कि प्रथम तो यह कहना ही निराधार है कि वाल-दीक्षा के समर्थन में ये दो ही उदाहरण मिलते हैं। किसी भी साधु परम्परा का इतिहास हम उठा कर देखेगे तो अवश्य वहा वाल दीक्षित साधुओ का प्रभावपूर्ण इतिहास मिलेगा अपेक्षाकृत प्रौढ दीक्षितो के जिनकी कि झाकी हम पिछले प्रकरणो में दे ही आये हैं। शकराचार्य व हेमचन्द्राचार्य के नाम पुन-पुन इसलिये लिये जाते हैं कि उन्हें वहुसख्यक लोग जानते है। पर इसका तात्पर्य यह भी नही कि वे दो ही आचार्य है जिन्हें वहुसख्यक लोग जानते हो। किन्तु ऐसे पचासों व सैकडो नाम हैं जिन्हें दो की तरह ही वहुसख्यक लोग जानते है। फिर भी जितने वाल दीक्षित आचार्यो के नाम आवाल प्रसिद्ध है उतने ही योग्य उच्च कोटि के थे यह कोई मान दड नही है। योग्य होना एव सुप्रसिद्ध होना ये दोनो नितान्त पृथक् वाते है।

यदि एक क्षण के लिये यह भी माना जाय कि सैकडो वालदीक्षित साधुओ में कोई एक आघा ही असाधारण कोटि मे आनेवाला व महापुरुष कहलाने योग्य वन पाता है तव भी तो यह सोचना चाहिये कि महापुरुष तो सैकडो में से एक का होना भी वहुत वडी वात है। वह अकेला

महापुरुष भी लाखो करोडो मनुष्यो को आलोक देता है। यदि समाज सौ व इससे भी अधिक वालको को इस पुण्य मार्ग में लगने देता है और उनमें से एक महापुरुष पाता है तो यह घाटे का सौदा नही है।

यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि कुछ बालक इस रास्ते से आगे बढते जायेंगे तभी तो उक्त प्रकार के महापुरुपो की सम्भावनायें जीवित रहेंगी। इतना विज्ञान तो किसी के पास नही है जो महापुरुष बनने वाला है वही वालक अवस्था में साधु बने और कोई न बने। पहले भी वहुत सारे वालक इस मार्ग पर आते थे और उनमें से कुछ एक अपने जीवन काल में महापुरुष की कोटि में आ जाते।

महावीर और बुद्ध वाल-दीक्षित नही थे

लोग कह सकते है क्या वाल दीक्षा से ही महापुरुष पैदा होते है? महावीर बुद्ध क्या वाल दीक्षित थे? हा यह तो कोई नही कहता कि वाल-दीक्षा के विना कोई महापुरुष नही वन पाते। किन्तु यह तो मानना ही होगा कि आज के युग मे ज्ञान और चरित्र की सुदीर्घ साधना के लिये बाल दीक्षित साधुओ को जो अवसर मिलता है वह पौढ दीक्षितो को नही। इसलिये आध्यात्मिक उन्नति के शिखर पर पहुँचना उनके लिये ही अधिक सम्भव हो सकता है। २० वर्ष की उम्र में क, ख से शुरू करने वाला व्यक्ति कव तक अपने जीवन में साहित्यरत्न, एम ए व पी एच डी हो सकेगा? हा, यह वात तो नही है कि ३० वर्ष मे पढना आरम्भ कर कोई एक-आध भी एम ए पी एच डी, आदि नही हो सकता। पर उसके होने से जनता को लाभ कैसे मिलेगा? जव कि उसकी परीक्षा के अन्तिम दिन उसके जीवन के ही अन्तिम दिन होने लगेंगे।

स्थिति यह है कि कोई एक व्यक्ति ३० वर्ष की अवस्था से पढना आरम्भ कर उच्च कोटि का विद्वान् वन सकता है किन्तु यह सामान्य नियम नही हो सकता। सामान्य नियम तो यही रहेगा कि किसी विषय के उच्चतम अध्ययन के लिये वाल्यावस्था से ही उसका आरम्भ करना पडता है। यही स्थिति दीक्षा के विषय में है। हो सकता है कि कुछ व्यक्ति प्रौढावस्था मे भी दीक्षित वन कर उन महापुरुषो की कोटि में आ गये हो, किन्तु सामान्य नियम तो वाल-दीक्षितो का ही वहा पहुचने का रहेगा। महावीर स्वामी का उदाहरण तो यहा वरावर लगता भी नही है। वह सत्युग की वात थी, जव कि व्यक्ति क्रमिक विद्याध्ययन के विना भी केवलज्ञान प्राप्त कर सकता था। इसी प्रकार महावीर स्वामी भी केवलज्ञान प्राप्त करके ही महाप्रभु वने थे। यही वात भगवान वुद्ध के लिये कही जाती है। अत' इनके उदाहरण प्रौढ दीक्षा के पक्ष के उक्त पहलू पर कोई वल नही देते।

साराश यह रह जाता है कि वाल-दीक्षा से महापुरुष की कोटि तक आने वाले अपवाद रूप नही है, अपितु प्रौढदीक्षा से महापुरुष की कोटि तक आने वाले व्यक्तियो की उपेक्षा से वे अनुपात में कही अधिक है।

वालदीक्षा ही अपवाद रूप क्यो न मानी जाय ?

यह वताया जा चुका है कि हेमचन्द्राचार्य, शकराचार्य आदि वालको में अपवाद रूप योग्य हो गये है ऐसी वात नही है। फिर भी यदि आग्रह रह जाता है कि वे अपवाद रूप ही थे तो वाल्यावस्था मे योग्य विधि से साधुमार्ग पर चलने वाले थोडे से समस्त वालको को ही योग्यता में अपवाद रूप क्यो नही मान लिया जाता ? यह कहा

जाता है कि सहस्रो बालको में कोई बालक अपवाद रूप होता है जो अपने ज्ञान, आचरण एव कौशल से जनता में अपना विलक्षण परिचय देता है। यह देखना चाहिये कि सहस्रो बालको में से कोई एक बालक माता-पिता व भौतिक साधनो की आसक्ति को छोड कर स्वेच्छा से साधुता के दुरूह मार्ग पर आता है और आनन्द पूर्वक अपने मार्ग पर बढता है, क्या यह विलक्षणता नही है ? इसीलिये समग्र बालदीक्षित साधु ही अपवाद रूप क्यो न माने जाये ? वे कितने होते है ? उसका उत्तर होगा सहस्रो और लाखो के अनुपात में कोई एक-एक। हर एक बडी समाज में सहस्रो और लाखो बालक होते है उनमें से बाल्यकाल में दीक्षा ग्रहण करने वाले क्या उक्त अनुपात से अधिक होगे ?

बालदीक्षा का प्रश्न सामाजिक है या धार्मिक ?

इस विषय मे यह भी एक महत्वपूर्ण पहलू ह कि बालदीक्षा का प्रश्न सामाजिक है या धार्मिक ? जो लोग कानून बनाने के पक्ष में है वे इसे निकेवल सामाजिक प्रश्न बताते है और दूसरे पक्ष के लोग निकेवल धार्मिक। उक्त तर्क के पैदा होने का मूल हेतु है भारतवर्ष का सविधान। क्योकि वहाँ प्रत्येक व्यक्ति को धर्म-स्वातन्त्र्य का अधिकार इन शब्दो मे घोषित किया गया है—"सब व्यक्तियो को अन्त करण की स्वतन्त्रता का तथा धर्म के अबाध रूप मे मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान हक होगा१।" अत धार्मिक मान लेने मे उन लोगो का जो सामाजिक

---

1 All persons are equally entitled to freedom of conscience and the right to profess, practise and propagate religion

(The Constitution of India, Page 13)

बताकर कानून बनाने के पक्ष में हैं, पक्ष गठित होता है। वे लोग विधान के राज्यनीति निर्देशक तत्त्व विभाग को अपने पक्ष समर्थन के लिये आगे रखते हैं यहां अनुच्छेद ३९ व ४० में माना गया है कि "शैशव और किशोर अवस्था का शोषण से तथा नैतिक व आर्थिक परित्याग से संरक्षण हो।"१ अस्तु।

उक्त दोनो पक्षों की उक्त आधार भित्तियों से इस विषय पर विचार करना है। दीक्षा ग्रहण करने में बच्चों का शोषण होता है व उनका नैतिक व आर्थिक परित्याग होता है यह किसी भी विचारक के हृदय को छूता नहीं। उक्त आरोप तो तब घटित होते हैं जब किसी बालक को धोखा देकर या बलात् उससे धन छीना जाता है, उसे पतित किया जाता है, और उसे बलपूर्वक किसी यातना में रखा जाता है। दीक्षा का इन तीनों बातों से कोई लगाव नहीं होता। दीक्षा क्या है, "मैं अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह आदि का आजीवन पालन करूँगा' इसमें शोषण है या नैतिक पतन है? अर्थ को वह स्वयं स्वेच्छा-पूर्वक ठुकरा कर चलता है। शोषण वहां होता है जहां उससे कोई छीनता हो या वह स्वयं उसका उलजलूल कामों में दुरुपयोग करता हो। तर्क हो सकता है कि दीक्षित होने के पश्चात् उसका धन पर कोई वैधानिक अधिकार नहीं रहता। अतः यदि वह दीक्षा से वापिस घर में आता है तो उसे परमुखापेक्षी होना पड़ता है। यही विधान में कहा गया आर्थिक-परित्याग है। बालदीक्षा को रोक कर इस

1. The state shall, in particular, direct its policy towards securing—(f) that childhood and youth are protected against exploitation and against moral and material abandonment

(The Constitution of India, Article 39)

आर्थिक परित्याग से बालक को बचाना इसीलिये विधान समर्थित है। प्रथम तो विधान में कहा गया आर्थिक परित्याग यह है ही नही जैसे कि ऊपर बताया गया। यदि एक क्षण के लिये इसे आर्थिक परित्याग माना जाय तो भी बाल-दीक्षा बन्द करके उससे बालक का सरक्षण किया जाय वह तरीका गलत है। यदि जितने बालक दीक्षित होते है उतने सारे ही गृहस्थ जीवन में आकर यदि अपना आर्थिक अधिकार चाहते तो फिर भी कोई बात थी। ऐसे बालक तो सम्भवत १० प्रतिशत भी नही मिलेंगे। तब उन १० व्यक्तियो को आर्थिक अधिकार दिलाने के लिये ९० बालको की दीक्षा रोकना जरूरी होता है या १०० में से आने वाले १० बालको को उनका न्याय दिलाना ? इस प्रकार आर्थिक सरक्षण के दृष्टिकोण से भी उक्त प्रकार के कानून का बालदीक्षा से कोई सम्बन्ध नही बैठता। प्रश्न रहता है केवल उन १० बालको को अधिकार दिलाने का। उस विषय में पहले ही लिखा जा चुका है, सरकार कोई भी व्यवस्था सोचे किसको आपत्ति हो सकती है।

दूसरा एक दृष्टिकोण है, बालदीक्षा के दोनो पक्षो मे भारतीय विधान के जो दो आधार खोजे गये हैं उनमें धार्मिक स्वतन्त्रता का आधार सुदृढ तथा महत्वपूर्ण है। यह आधार विधान के मूल अधिकार नामक तीसरे भाग से लिया गया है और किशोरावस्था का सरक्षण हो यह आधार "राज्य की नीति के निर्देशक तत्त्व"१ नामक भारतीय विधान के चतुर्थ भाग से लिया गया है। यह सारा चौथा भाग ही वास्तविक विधान न होकर

---

1. Directive Principles of State Policy.

केवल राज्यनीति का निर्देशन मात्र है। जैसा कि विधान के उसी प्रकरण में इन शब्दो में माना गया है–"इस भाग में दिये गये उपवन्धो को किसी न्यायालय द्वारा वाध्यता न दी जायेगी।"१

धार्मिक-स्वतन्त्रता को मूल अधिकारो में लिया गया है इसलिये यह सारे विधान का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। अत वालदीक्षा का पक्ष भारतीय विधान से अधिक समर्थन पाता है। विशेप वात यह है कि उस धारा में माना गया है–"सव व्यक्तियो को धर्म के मानने और आचरण करने का समान हक होगा।" सव व्यक्तियो में वालक नही आ सकेंगे ऐसा कोई विकल्प ही नही वन सकता। फिर भी भारतीय कानून व्यवस्था के अनुसार तो १८ वर्प से कम उम्र के वालक को भी उल्लेखपूर्वक धार्मिक स्वतन्त्रता दी गई है—"भारतीय वालिग अवस्था विधेयक" जहाँ वालिग-अवस्था के १८ वर्प का नियमन किया गया है वहाँ निम्न स्पष्टीकरण स्वय प्रस्तावित है--"यह विधेय भारतीय प्रजा के किसी भी वर्ण के धर्म और उनके धार्मिक आचार, व्यवहार व रीति-रिवाजो पर लागू नही पडता।"२ अस्तु।

विषय और भी स्पष्ट हो जाता है जव कि धार्मिक स्वतन्त्रता सम्वन्धी

---

1 The provisions contained in this Part shall not be enforceable by any court.

(The Constitution of India, Art 37)

2. Nothing herein contained shall offect—(b) the religion or religious rites and usages of any class of Her Majesty's subjects in India.

(Indian Majority Act, See. 2)

उल्लिखित समस्त वैधानिक पहलुओ पर ध्यान दिया जाय। विधान शास्त्रियो ने वालको को इस धारा का अपवाद नही माना है नही तो वे अवश्य इस सम्वन्ध में कोई उल्लेख करते। तर्क उठ सकता है कि सामाजिक कल्याण इस नियम का अपवाद है। इस आधार पर वाल दीक्षा ही इसके अन्तर्गत आ जाती है। यह पहले वताया जा चुका है कि वालदीक्षा के ग्रहण व परित्याग से कोई सामाजिक अनिष्ट तो है ही नहीं। अत यह विषय समाज सुधार की कोटि में तो आता ही नहीं है। वालदीक्षा को जैसे कि कुछ सामाजिक अभिशाप और मानवता का कलक वता कर गम्भीर (Serious) विषय वना देते है वैसा विधान शास्त्रियो ने तो समझा नही होगा। इतने गम्भीर सुधार जो उनके मस्तिष्क में थे वे तो उन्होने उसी प्रकरण में अपवाद रूप रख दिये है। उदाहरणार्थ अस्पृश्यता को उन्होने अवश्य सामाजिक अभिशाप माना है। अत उसी प्रकरण के अपवाद "ख" में लिख देते है "इस अनुच्छेद की कोई वात हिन्दुओ की सार्वजनिक प्रकार की धर्म सस्थाओ को हिन्दुओ के सव वर्गों और विभागो के लिये खोलती हो ऐसी विधि के वनाने में रुकावट न डालेगी।"१ अस्तु। वालदीक्षा को भी यदि विधान सभा में वैठन वाले वहुसख्यक लोग एक सामाजिक अभिशाप समझते तो क्या विधान वाचन के समय उक्त धम सस्था सम्वन्धी सकेत की तरह वालदीक्षा के सम्वन्ध में भी कोई अनुवन्ध नही जुड जाता? अत सव प्रकार से यह स्पष्ट हो जाता है कि वाल दीक्षा नितात धार्मिक प्रवृत्ति है न कि सामाजिक।

कुछ विपय तो ऐसे भी हो सकते हैं जिनका सम्वन्ध धर्म से भी हो और

समाज से भी। ऐसे विषयो के लिये विधान में कोई तीसरी श्रेणी नही बनाई गई। ऐसे विषयो के लिये यही देखना होगा कि यह सामाजिक अधिक है या धार्मिक अधिक। जो लोग बालदीक्षा को एकात धार्मिक विषय नही मानते उन्हें भी तो यह मानना ही होगा कि यह सामाजिक से अधिक धार्मिक है। ऐसी स्थिति में बालदीक्षा विरोध का प्रश्न धार्मिक स्वतन्त्रता के विरोध का प्रश्न बन जाता है।

स्थिति यह है कि दीक्षा धर्म-क्षेत्र का एक विशिष्ट उपासना मार्ग है। यदि यह भी धार्मिक पहलू न माना जाय तो धार्मिक-स्वतन्त्रता देने का अर्थ ही क्या रह जाता है? फिर तो दूसरी कोई धार्मिक क्रिया नही रह जायेगी जो धार्मिक स्वतन्त्रता के मौलिक अधिकार में स्थान पा सकती हो।

नवीन विज्ञान के अनुसार बालक की उम्र को वर्षो से आँकना असगत

आज के बुद्धिवादी जगत मे शास्त्रीय विश्वास घटा है क्योकि आधुनिक विज्ञान की ओर उसका आकर्षण बढा है। पिछले प्रकरणो मे धर्मशास्त्रो के आधार पर जहा बालक की सम्भाव्य योग्यता का विवेचन हुआ, वहा आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से भी इस विषय को परख लेना प्रस्तुत प्रकरण का विषय है।

बालक की क्रमिक विकास दशाओ का विवेचन करते हुए वहा यह माना गया है—तीन–चार वर्ष की उम्र मे ही "बालक अपनी टोली मे अपने आप को व्यवस्थित करने के हेतु बहुत सारी उपयोगी बाते सीख जाता है जो कि उसके युवावस्था के जीवन में अपनी समाज के साथ घुलमिल जाने

के लिये आवश्यक होती है। जैसे आत्म विश्वास, नेतृत्व आदि१।" अर्थात् तीन-चार वर्ष की उम्र में ही बालक जब अपने साथियो के साथ खेलता है तब उसमें आत्म-विश्वास, नेतृत्व आदि गुण विकसित हो जाते है।

बालक के बौद्धिक विकास का वर्णन करते हुए बताया गया है-"बालक की उम्र को केवल वर्षों और महीनो के आकडो में सोचना बहुत ही असन्तोष-प्रद है। क्योकि उसकी कालक्रम सम्बन्धी उम्र उसकी बौद्धिक उम्र के समान नही होती है जो कि (बौद्धिक उम्र) उसके मस्तिष्क सम्बन्धी परिपक्व विकास को व्यक्त करती है। एक बालक की शारीरिक उम्र का अर्थ है अस्थि मासपेशी और इन्द्रियो की स्थिति। उक्त शारीरिक और बौद्धिक ये दो अवस्थायें कालक्रम की उम्र (calender age) से बहुत पीछे भी रह सकती है और बहुत आगे भी बढ़ सकती है२।

---

1 He learns many valuable lessions in adjusting himself to the demands and ideals of his group as he will latter have to adjust himself to the demands and ideals of his community. Self-reliance, initiative, and leadership develop through group play (Your Child from one to six, Page 82)

2 To think of a child's age only in terms of years and months is very unsatisfactory, because his Chronological age, as this is called, may not agree with his Mental age, which refers to the degree of maturity of his mind The Physiological age of a child means the stage of development his bones, muscles, and organs have reached One of these ages may lag behind his Calender age or it may be ahead of it

(Your Child from one to six, Page 84)

तात्पर्य यह हुआ कि पचाग की उम्र के साथ शारीरिक एव बौद्धिक विकास का घनिष्ट सम्बन्ध नही है। ऐसी स्थिति में दीक्षा के सम्बन्ध को उम्र के साथ जकड देना आधुनिक मनोविज्ञान की अनभिज्ञता है। उम्र के निर्धारण में भी १८ वर्ष का निर्धारण तो नितात अमनोवैज्ञानिकता है जबकि ३ और ४ वर्ष के बालक में आत्म-विश्वास और नेतृत्व आदि गुणो का विकास होता है। १८ वर्ष से पूर्व बालक में दीक्षा क्या है यह समझने की योग्यता और उस पर चलने की दृढता नही आती, आधुनिक मनोविज्ञान के मत से तो यह बात अत्यन्त उपहासास्पद है। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार तो बालक अपनी १०, १२ वर्ष की उम्र में ही एक समुचित मोड लेकर अपने भावी जीवन के सही रास्ते पर आ सकता है।

तेरापथ की दीक्षा प्रणाली और उसके सुन्दर परिणाम

अयोग्य बाल दीक्षा का निराकरण

यह सर्वसम्मत ऐतिहासिक तथ्य है कि तेरापथ स्वय एक सुधारमूलक क्राति का परिणाम है। तेरापथ के प्रवर्त्तक आचार्य 'श्री भिक्षुक' के सामने अन्य सुधारो के साथ दीक्षा-प्रणाली के सुधार का भी विषय था। वे अयोग्य व अनुपयुक्त दीक्षा के कट्टर विरोधी एव सुस्पष्ट आलोचक थे। उन्होने केवल बाल दीक्षा के अयोग्य प्रकारो पर ही पहार नही किया अपितु समग्र दीक्षा व्यवस्था के विषय में एक आमूल क्रान्ति की। उन्होने उन कारणो को खोजा जिन कारणो से अयोग्य दीक्षाये होती थी और उनका आमूल निरोध किया।

उनका अनुभव था, स्वतन्त्र शिष्य प्रथा के कारण अयोग्य दीक्षाओ को अवसर मिलता है। एक गुरु के चार शिष्य है चारो अपने-अपने अलग

शिष्य बनाते है, शिष्यो के शिष्य फिर अपने-अपने शिष्य वनाते है, इसमें एक वुराई तो यह होती है कि साधु सघ छिन्न-विछिन्न और विशृखल हो जाता है, गुरुओ में परस्पर शिष्य गौरव की प्रतिस्पर्धाये वढती है और उनकी पूर्ति के हेतु उन्हें अपनी साधना से नीचे खिसकना पडता है। यह हुई गुरु-पक्ष की हानि। इसी स्वतन्त्र शिष्य प्रथा का दुष्परिणाम ही ही दीक्षार्थियो के जीवन पर पडता है, कि दीक्षार्थी का कोई परीक्षण नही हो पाता। उसका सस्कार, उसका वैराग्य, उसका ज्ञान, उसका चरित्र कैसा है इसका उत्तर पाने के लिये गुरुओ के पास धैर्य नही रहता है। उन्हे डर होता है कि मै इसे दीक्षा नही दूगा तो मेरा गुरु भाई कोई और दे डालेगा। अमुक गुरु के इतने शिष्य है तो मेरे उससे अधिक क्यो न हो ? आदि वुराइया तो उक्त प्रथा से सहज है ही और धीरे-धीरे यही दोष यहा तक बढ जाता है कि छोटे वालको को भुलावा व प्रलोभन देना, माता-पिता को द्रव्य दिला कर वालक को दीक्षा देना, मातापिता के आज्ञा के विना ही वालको को दीक्षा देना व एक गुरु से सम्वन्ध तुडवा कर अपने से इसका सम्वन्ध जोडना आदि घृणित एव पापपूर्ण कार्य भी उक्त प्रथा के अनुसार होने लग जाते है। अत तेरापथ के प्रवर्त्तक आचार्य श्री भिक्षु ने दीक्षा प्रणाली के सुधार के लिये इसी प्रथा पर प्रहार किया। उन्होने अपने तेरापथ के लिये विधान वताया—'शिष्य करणा ते भारीमालजी रै नामे करणा' अर्थात् कोई अपना-अपना शिष्य न वनाये। दीक्षार्थी की परीक्षा करना व उसे दीक्षा देना यह कार्य केवल आचार्य के अधिकार का होगा। उन्होने केवल विधान वना कर ही इस विपय को नही छोड दिया, अपितु समस्त साधु-साध्वियो को अलग दीक्षा देकर अपना शिष्य न वनाने का उन्हें हृदय

से स्वीकृत करा कर त्याग कराया और विधान को चरितार्थ रूप दिया। भविष्य में भी तेरापथ साधु समाज में ऐसी बुराई न आये इसलिये ऐसा विधान बनाया कि प्रत्येक दीक्षार्थी के लिये दीक्षा सम्बन्धी महाव्रतो के साथ "मैं अपना शिष्य नही बनाऊँगा" यह व्रत भी अनिवार्य होगा। सघ सगठन व सघ विशुद्धि की रक्षा के लिये उन्होने अन्तिम समय में भी अपने उत्तराधिकारी आचार्य श्री भारमलजी स्वामी को यही शिक्षा दी 'जिणतिण ने भूत मूडज्यो, दीक्षा देज्यो देख-देख" अर्थात् जो आया उसे ही दीक्षा मत दे देना। दीक्षार्थी के ज्ञान, सस्कार, चरित्र आदि को लेकर पूर्ण २ परीक्षा करके ही दीक्षा देना। अस्तु, उक्त प्रकार के सुदृढ विधान और असाधारण शिक्षाओ के परिणाम स्वरूप तेरापथ की दीक्षा-प्रणाली आज लगभग दो सौ वर्षो के पश्चात् साधुसघ की व्यापकता के साथ-साथ और भी निखर गई है।

वर्तमान दीक्षा व्यवस्था

तेरापथ साधु सघ की व्यवस्था के अनुसार समस्त साधु समुदाय मे एक ही आचार्य होते है। वर्तमान आचार्य अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्त्तक श्री तुलसीगणि है, जिनके अनुशासन में अबतक लगभग ६५० साधु साध्विया है। लाखो की सख्या में तेरापथ के अनुयायी श्रावक जन है। साधु साध्वी जन लगभग १२५ दलो मे (in groups) समग्र भारतवर्ष मे विहरण करते है। हरएक साधु को किसी को दीक्षित कर अपना शिष्य बनाने का त्याग है।

माता-पिता व अभिभावको की सहर्ष लिखित सम्मति के बिना तेरापथ में कोई दीक्षा नही हो सकती। अत दीक्षार्थी को पहले उनके पास

ही परीक्षा आरम्भ हो जाती है। क्योकि स्वभावत अपने मोह व अनुराग के कारण धार्मिक-से-धार्मिक माता-पिता भी अपनी सतान को एकाएक आज्ञा देना चाहते नही, व उसके निर्णय पर उन्हें भरोसा नही होता अत उसे जैसे-तैसे सासारिक वासना में भूलाना चाहते हैं। किसी भी दीक्षार्थी के लिये वह एक कठिन परीक्षा काल होता है। एक ओर साधु बन जाने की उत्कठा और दूसरी ओर माता-पिता के नर्म-गर्म प्रयत्न। पर जबकि माता-पिता आदि का मोह व उनके प्रलोभनात्मक प्रयत्न दीक्षार्थी के लिये असफल हो जाते है और माता-पिता आदि विवेकपूर्वक उसके इस पुनीत अभिमान में सहर्ष अपना योग करते है वहा दीक्षार्थी की परीक्षा का पहला चरण समाप्त होता है। जिस दीक्षार्थी का वैराग कच्चा होता है वह इस परीक्षा में असफल ही रह जाता है। अभिभावको के व उनकी सम्मति के साथ दीक्षार्थी आचार्यश्री के पास पहुँचता है, यहा उसके परीक्षा के द्वितीय चरण का आरम्भ होता है।

आचार्यवर आते ही किसी वैरागी को दीक्षा नही दे। देते एक लम्बी अवधि तक वे उसके वैराग्य, चरित्र व ज्ञान की परीक्षा करते रहते है[१]। उस परीक्षा में कभी-कभी पाच-पाच, सात-सात वर्ष भी लगा देते है।

---

१ विगत ६ वर्षो से अखिल भारतवर्षीय तेरापथ महासभा द्वारा परमार्थिक शिक्षण संस्था नामक एक प्रवृत्ति चालू है। उक्त संस्था में दीक्षार्थी जन अपने साधना काल में अध्ययन व साधना करते है। वहाँ उनके लिये हिन्दी सस्कृत व जैन तत्व आदि का ज्ञान प्राप्त करने की व्यवस्था रहती है। वहाँ रहने वाले दीक्षार्थी साधुचर्या के नियमो का भी यथोचित अभ्यास करते है। आचार्य श्री तुलसी स्वयं समय-समय पर उन दीक्षार्थियो की दीक्षा सम्बन्धी योग्यताओ का निरीक्षण व परीक्षण करते रहते है।

किसी-किसी को उक्त परीक्षा के पश्चात् दीक्षा के अनुपयुक्त समझ कर दीक्षा देने से इनकार भी कर देते हैं। इस बीच में दीक्षार्थी व उसके अभिभावक पुन पुन आचार्यवर से प्रार्थना करते रहते है, पर वे दीक्षा का आदेश तब ही देते है जब उन्हे उसकी योग्यता का पूरा भरोसा हो जाता है।

दीक्षा का आदेश पाने तक भी दीक्षार्थी को कई श्रेणिया पार करनी पडती है। प्रथम विश्वास पर आचार्यश्री का ऐसा आदेश मिलता है कि तुम निर्धारित आध्यात्मिक प्रशिक्षण का अभ्यास करो। इस आदेश के पाने पर दीक्षार्थी दीक्षा पाने के मार्ग मे तनिक-सी सफलता का अनुभव करता है। जब वह प्रशिक्षण आदि कार्य में अपनी कुशलता का परिचय दे देता है तब वह साधु प्रतिक्रमण का आदेश पाता है। इसके पश्चात् दीक्षार्थी के व उसके अभिभावको के विशेष अनुरोध पर उसकी दीक्षा देने की घोषणा करते है।

दीक्षा पूर्व घोषणा के अनुसार निश्चित स्थान व निश्चित तिथि पर सार्वजनिक वातावरण में होती है। दीक्षा से पूर्व अभिभावको द्वारा लिखा गया आज्ञापत्र, जिसमें अभिभावको के व कम-से-कम ३ अन्य मान्य व्यक्तियो के हस्ताक्षर रहते है, पढ कर सब लोगो को सुनाया जाता है। इसके बाद आचार्य प्रवर दीक्षार्थी के अभिभावको से पुन मौखिक रूप से पूछते है—तुम सब की सहर्ष आज्ञा है ? मै दीक्षा दू ? तदुपरात दीक्षार्थी के सगे सम्बन्धी खडे होकर मौखिक आज्ञा[१] समर्पित करते है और उसे दीक्षित करने का विनम्र अनुरोध करते है तब आचार्य प्रवर 'करेमि भन्ते सामाइय' के शास्त्रीय पाठ का उच्चारण कर समग्र दीक्षा विधि सम्पन्न करते है।

---

१ आज्ञा-पत्र का नमूना परिशिष्ट में दिया हुआ है।

अनुभव की बात

वालदीक्षा के विषय में तर्क के आधार पर वहुत कुछ लिखा जा चुका है। प्रयोग और अनुभव तर्क से भी वडे होते हैं। योग्य वालको की योग्य गुरुओ के हाथ दीक्षा होने का सामाजिक एव आध्यात्मिक दृष्टि से कितना सुन्दर परिणाम रहता है यह तेरापथ सम्प्रदाय का विगत २०० वर्ष का इतिहास स्वय प्रमाणित कर देता है और वालदीक्षा सम्बन्धी वहुत सारे उलझन भरे प्रश्नो का भी अनुभव-सिद्ध उत्तर दे देता है।

जो लोग कहते है कि बालदीक्षा इसलिये नही होनी चाहिये कि बालक का निर्णय भावुकता के आधार पर होता है, उनमें दीर्घ दृष्टि नही होती, अत उनमें से वहुत सारे आगे चलकर अपने साधनामार्ग से फिसल जाते हैं। प्रौढ दीक्षा में ऐसी सम्भावनायें कम रहती है, क्योकि उनका निर्णय परिपक्व होता है।

उक्त धारणा का प्रयोग-सिद्ध उत्तर यह है कि तेरापथ की आदि से अवतक १९५ वर्षों में समग्र दीक्षाये १९२३ हुई है। उनमें १८ वर्ष से ऊपर की आयुवाले दीक्षितो की सख्या १३६९ है और १८ वर्ष से ९ वर्ष तक के दीक्षार्थियो की सख्या ५५४ है। वयस्क दीक्षितो मे साधु धर्म से स्खलित हुए जिनका अनुपात १३ प्रतिशत पडता है। वालदीक्षित साधुओ में आगे चल कर जीवन की किसी उम्र मे दीक्षा-धर्म को छोडा जिनका अनुपात ६ प्रतिशत होता है।

उक्त आँकडो मे यह धारणा नितान्त निराधार हो जाती है कि प्रौढ दीक्षितो का निर्णय परिपक्व होता है। इसलिये आजीवन वे इनमें चलते

हैं और वाल-दीक्षितो का निर्णय क्षणिक होता है इसलिये वे अपनी साधना से स्खलित होते हैं। उक्त निर्णय में स्खलित होने वालो में बाल दीक्षितो की अपेक्षा वयस्क दीक्षितो की सख्या लगभग दुगनी है। उक्त अभिमत के अनुसार वालदीक्षा इसलिये बुरी है कि वालदीक्षित साधु सख्या में अपनी साधना से गिर जाते हैं। यदि गिरने के अनुपात से दीक्षा के औचित्य की कसौटी मानी जाय तो यहा यह सिद्ध होता है कि वयस्क दीक्षा की अपेक्षा बाल-दीक्षा अधिक उचित है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि

वालदीक्षा का औचित्य मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अस्वाभाविक भी नही है क्योकि वयस्क दीक्षित अपने साथ अधिक कुसस्कारो का अस्तित्व ला सकते हैं अपेक्षाकृत वालदीक्षितो के। वालक का जीवन स्वय स्वच्छ होता है व दीक्षा के स्वच्छ वातावरण तें उसकी स्वच्छता बढती ही रहती है। अत॰ उसमें कुसस्कार पैदा नही होते और उसके स्खलित होने का वातावरण नहीं वनता। प्रौढ दीक्षितो में गृहस्थ-जीवन की नाना वासनायें सस्कारित होती है और समय आने पर उनके उभरने की अधिक सम्भावनायें रह जाती है। इसलिये मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी वालदीक्षा श्रेष्ठतर ही स्थिर रहती है।

आधुनिक मनोविज्ञान के आचार्यो ने भी माना है जीवन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन की दो अवस्थाये होती है, ११ से १२ या २० से २१। इन अवस्थाओ में व्यक्ति का जीवन एक नयी मोड लेता है। वहुधा वह भोग की तरफ मुडता है पर कभी-कभी एकाएक त्याग की तरफ भी मुड जाता

है। अस्तु नव-दस वर्ष की उम्र में किसी-किसी वालक का सन्यास धर्म की ओर झुकाव होना अत्यन्त स्वाभाविक है।

बालदीक्षा की अन्य सफलता

दीक्षा सम्बन्धी उक्त आकडो से इस वात का भी सुन्दर समाधान मिलता है कि दीक्षा जीवन का दु:साध्य मार्ग है इस पर वालको को लगाना उचित नही। उक्त आकडे वताते हैं कि तेरापथ की योग्य दीक्षा प्रणाली से दीक्षित साधुओ में लगभग ९० प्रतिशत साधु अपनी साधना में सम्पूर्ण सफल रहे हैं। किसी भी विचारक को यह मानना होगा कि आजीवन की कठिन तप:साधना में ९० प्रतिशत व्यक्तियो का सफल होना उच्चतम सफलता है।

तर्क हो सकता है कि इसमे १० प्रतिशत वालको का जीवन तो गिरा ही। समझने की बात यह है कि किसी भी कार्य में स्खलन की यत्किंचित सम्भावना तो रहती ही है। किन्तु उन सम्भावनाओ से उस कार्य की श्रेष्ठता नष्ट नही हो जाती। जलयान, वायुयान, वाष्पयान आदि चलते हैं, वडी-से-वडी दुर्घटनायें आये दिन होती रहती हैं और भविष्यकालिक सम्भावनायें भी ज्यो-की-त्यो वनी रहती हैं। तिस पर भी लोग उन साधनो से यातायात का लाभ उठाते ही रहते हैं, उन्हें वन्द कर देने की कभी नही सोचते। अधिक-से-अधिक यही सोचा जाता है कि व्यवस्था में सुधार हो और दुष्परिणाम की सम्भावनायें कम होती जायें। वाल-दीक्षा व दीक्षा के विपय को भी इससे आगे तक सोचना किसी प्रकार से यथार्थ नहीं ठहरता।

नौ आचार्यो मे आठ आचार्य वालदीक्षित

तेरापथ साधु सस्था का इतिहास योग्य वालदीक्षा के पक्ष में एक अकाट्य और ज्वलत उदाहरण उपस्थित करता है। आचार्य श्री भिक्षु से लेकर वर्तमान आचार्य श्री तुलसी नवम आचार्य है। जैसा कि वताया गया है सघ में वयस्क दीक्षित साधु वालदीक्षितो की अपेक्षा हमेशा ही भारी वहुमत में रहे है फिर भी आचार्य पद के नव अवसरो में आठ अवसर वालदीक्षित साधुओ ने ही लिए। यह सव जानते हैं कि तेरापथ के भावी आचार्य का निर्वाचिन वर्तमान आचार्य ही साधु सघ में से किसी योग्यतम साधुओ को परख कर कर देते है। इसका तात्पर्य यह भी नही कि प्रौढ़ दीक्षितो में कोई योग्य नही होते। परन्तु आचार्यके निर्वाचिनमें प्रश्न रहता है योग्यतम का। यहाँ प्रथम आचार्य श्री भिक्षु गणिराज के पश्चात् क्रमश वालदीक्षित साधु ही योग्यतम स्थिति पर पहुँचते आ रहे है। उन आठ आचार्यों का समग्र जीवन चरित्र एक विशाल ग्रथ का विषय रहता है। इसका तात्पर्य यह भी नही समझना चाहिये कि क्या हुआ यदि सैकडो वालदीक्षितो में आठ साधु आचार्य के योग्य हो गये तो ? तेरापथ का इतिहास वताता है कि आठ आचार्यों के अतिरिक्त और भी सैकडो वाल दीक्षित साधु ऐसे हुए है जिन्होने ज्ञान और चरित्र की सुदीर्घ साधना से अपने आप में वर्चस्व पैदा किया और आज भी कर रहे हैं।

तेरापथ और शिक्षा

सव जानते हैं कि तेरापथ एक सुसगठित एव सुव्यवस्थित साधु सस्था है। एक आचार्य के नेतृत्वमें सारी व्यवस्थायें सम्पन्न होती है। वालक साधुओ

का जीवन विकास कैसे हो ! इस विषय को लेकर सघ में एक समुचित व्यवस्था है। इस बात का अधिक से अधिक ध्यान रखा जाता है कि बालक साधु स्वच्छ वातावरण मे रहता हुआ अधिक से अधिक अपने ज्ञान और चरित्र का विकास करे। विगत ५ वर्षों से आचार्य श्री तुलसी ने एक सप्तवर्षीय अध्ययन पद्धति निश्चित कर दी है। जिसके अनुसार साधु साध्वियो में प्राकृत, सस्कृत, हिन्दी आदि भाषाओ का व दर्शन, साहित्य, न्याय, गणित, इतिहास, आदि विषयो का एक व्यापक दृष्टिकोण से विकास होता रहता है। आज लगभग ६५० साधु साध्वियोमें एक भी अशिक्षित नही है। प्रत्युत अनेको कवि, आशुकवि, उच्चकोटि के लेखक, वक्ता व विचारक हैं, जो अपनी वाणी से ही नही अपने जीवन से ही योग्य बाल-दीक्षा की शालीनता का परिचय देते हैं।

तेरापंथ मे दीक्षाएं अधिक होती है

योग्य व्यक्तियो की योग्य प्रकार से अधिक से अधिक दीक्षा हो यह कोई बुरी बात नही होती तथापि अपने पक्ष को उत्तेजन देने के लिये लोग कभी-कभी अयथार्थ प्रचार करने पर भी तुल जाते है। अच्छी बात के लिये या बुरी बात के अयथार्थ प्रचार दो हमेशा ही हेय है। तेरापथ में बाल-दीक्षायें व प्रौढ़ दीक्षायें अधिक होती हैं यह लगने का एक कारण तो यह है कि समग्र भारतवर्ष के तेरापथी दीक्षार्थी व्यवस्था के अनुसार केवल आचार्य श्री तुलसी के पास ही दीक्षा ग्रहण करते है। इसलिये समग्र वर्ष में होने वाली १०, २० दीक्षायें भी अतिशय लगती हैं। अन्य समाजो मे प्रचलित व्यवस्था की तरह यदि समग्र देश में घूमने वाले १२५ सिंघाडे (दल) एक

एक भी दीक्षा प्रतिवर्ष दें तो वर्ष मे १२५ दीक्षाये होगी और बहुतो को यह पता भी नही चलेगा कि तेरापथ में दीक्षाये होती है।

अपनी-अपनी दृष्टि होती है, दृष्टि के अनुसार व्यक्ति गुण से भी अवगुण निकाल लेता है। गुणग्राहिता की बात तो यह थी कि आलोचक लोग सोचते कि तेरापथ की दीक्षा प्रणाली कितनी सुधरी हुई है कि जहाँ ६५० साधुओ में किसी को दीक्षा देने की स्वतन्त्रता नही है और एक ही प्रामाणिक केन्द्र पर प्रामाणिक रूपसे दीक्षा होती है। उससे अयोग्य दीक्षा की सारी सम्भावनाये टल जाती है।

तेरापथ मे बालदीक्षा

वातावरण को उत्तेजन देने के लिए कुछ महानुभाव तेरापथ मे बाल दीक्षा कितनी होती है इसके मनगढत आकडे भाषणो में व लेखो में प्रकट कर देते हैं। आचार्य श्री तुलसी ४० व ५० बालको को इस वर्ष दीक्षा देंगे व बीसो-तीसो बालक प्रतिवर्ष मूँडे जाते है। तेरापथ में तो ७५ प्रतिशत से भी अधिक बालदीक्षित साधु हैं आदि, पर यह सब मिथ्या प्रचार है। स्थिति यह है कि विगत २ वर्षो में तेरापथ समाज मे एक भी बाल दीक्षा नही हुई है। यदि हम ५ वर्ष के आकडे उठाकर भी देखेंगे तो भी पता चलेगा कि उक्त प्रकार के आरोप यथार्थता से कितनी दूर हैं। विगत ५ वर्षो मे १८ वर्ष से कम अवस्था मे दीक्षित साधु साध्वियो की समग्र सख्या १८ है, जो प्रतिवर्ष के अनुपात से ३॥ के लगभग होती है। इतने वृहत्तर समाज के सहस्रो बालको मे से ४ बालको का दीक्षित होना किसी भी प्रकार अतिशय नही माना जा सकता। उसमे भी विशेष देखने की बात यह है कि

दीक्षा ग्रहण का शास्त्रीय नियम ९ वर्ष का होते हुए भी १४ वर्ष से कम उक्त १८ दीक्षाओ में एक भी दीक्षा नही है। अधिकाश दीक्षायें तो लगभग बालिग है। १८ दीक्षाओ में—४ दीक्षायें १७॥ वर्ष की, २ दीक्षायें १७ वर्ष की ५ दीक्षाये १६॥ वर्ष की, ३ दीक्षायें १६ वर्ष की, १ दीक्षा १५की, २ दीक्षा १४॥ वर्षकी एव १ दीक्षा १४ वर्ष की हुई है।

उक्त १८ दीक्षाओ मे ८ दीक्षायें वालिकाओ की है, और उनमें लगभग सभी १५ वर्ष से ऊपर की आयुवाली है, जिस उम्र में कि उन्हें कानून व्यवस्था के अनुसार विवाह सम्बन्धी अधिकार भी मिल जाते है। यदि उनकी दीक्षाएँ वाल दीक्षा में न मानी जाय तो तेरापथ सम्प्रदाय में ५ वर्षों मे होने वाली वाल दीक्षा केवल १० की रह जाती है जो प्रति वर्ष के अनुपात में २ पडती है।

निर्णायिक बालक

कहा जाता है कि वालकमें निर्णायक शक्ति नही होती। वह तो प्रेरणा पाकर किसी भी प्रवाह में यो ही वह पडता है। यहा तेरापथ परम्परा से तीन उदाहरण उद्धृत किये जाते है जो अपने आप में वहुत सारी विलक्षणता लिये है।

बालमुनि श्री भारमलजी

लगभग दो सौ वर्ष पूर्व की घटना है। तेरापथ के प्रवर्त्तक आचार्य श्री भिक्षु ने आत्म कल्याण की भावना से अपनी पूर्व परम्परा को छोड कर आत्म-साधना के वोधिलब्ध मार्ग (तेरापथ) की ओर कदम वढाया। किस्नोजी एव उनके पुत्र वालमुनि श्री भारमल स्वेच्छा से उनके साथ साधना

मार्ग पर आये। भिक्षु स्वामी ने कहा—किश्नो जी ! मैं तुम्हे अपने सघ में सम्मिलित नही रख सकता क्योकि उस कठोर साधना के लिये मैं तुम्हें उपयुक्त नही पा रहा हूँ।

किश्नोजी—यदि ऐसा होगा तो मै अपने पुत्र को भी आपके साथ नही जाने दूगा।

आचार्य श्री भिक्षु—मैं कब कह रहा हूँ कि उसे मेरे साथ ही चलना है।

द्वादश वर्षीय श्री भारमल मुनि आचार्य श्री भिक्षु के साथ जाना चाहते थे। पर उनके पिता साधु किश्नो जी बलात् उन्हें अपने साथ ले गये।

तीन दिवस के बाद साधु किश्नोजी बालक मुनि श्री भारमल को अपने साथ लेकर आचार्य श्री भिक्षु के पास आये और बोले—स्वामीजी ! मुझे चाहे आप अपने सघ में न लें किन्तु श्री भारमल ने तो आपके सघ में रहने का ही दृढ निर्णय कर लिया है। इन तीन दिनो मे मैंने उसको बहुत कुछ समझाया कि मै तुम्हारा पिता होता हूँ, मेरे साथ रहना तुम्हारा कर्त्तव्य होता है पर यह कहता है साधु हो जाने के पश्चात् पिता और पुत्र का कोई सम्बन्ध नही ठहरता है, गुरु और शिष्य का ही वास्तविक सम्बन्ध ठहरता है। अत स्वामीजी के सघ मे रहना ही मेरे लिये श्रेयस्कर है। फिर किश्नोजी ने कहा इसका निर्णय कहने तक ही सीमित नही है। उसने तीन दिनो से बराबर अनशन कर रखा है। आखिर मुझे ही हार खानी पडी है। आप कृपया इसे अपने साधसघ में सम्मिलित करें और सम्यग् प्रकार से विद्याध्ययन करा कर इसे योग्य बनायें। बालक की निर्णायकता पर स्वामीजी ने श्री भारमल मुनि को अपने सघ में ले लिया। किश्नो जी अपनी इच्छा अनुसार दूसरे सघ में चले गये। मुनि श्री भारमल को

पितृमोह ने तनिक भी नही सताया और जीवन भर अपने निर्णय पर दृढ़ निष्ठा के साथ चलते रहे। ये ही भारमल मुनि आगे चलकर आचार्य श्री भिक्षु के उत्तराधिकारी और तेरापथ के द्वितीय आचार्य बने।

बालमुनि कनक

१८ वर्ष पूर्व की बात है कि तेरापथ के नवम गणी आचार्य श्री तुलसी का चातुर्मास राजस्थान के सरदारशहर में था। मध्य प्रदेश 'वणी' से आकर पिता व पुत्र दो व्यक्तियो ने दीक्षा ग्रहण की। पिता का नाम कन्हैया लालजी, उम्र लगभग ४५ वर्ष की थी। पुत्र का नाम कनकमल और उसकी उम्र लगभग ९ वर्ष की थी। दीक्षा ग्रहण करने के कुछ दिनो के वाद पिता का मन साधुता के कठिन मार्ग से विचलित हो उठा। उसने यह भी निर्णय कर लिया कि वालमुनि कनक को साथ लेकर मुझे अपने घर जाना है। एक दिन अवसर देख कर कनक मुनि को उसने अपना सकल्प कहा। कनक मुनि को उनकी वात सुनकर वडा आश्चर्य हुआ। पिता और पुत्र में लम्बी वात चली। पिता उसे घर ले जाना चाहता था, वालक मुनि चाहता था पिता को सयम में दृढ़ करना, पर दोनो में कोई सफल नही हुआ।

पिता मुनि, जो कि अपने पूर्व जीवन में एक कुशल व्यवसायी था, अपनी वातचीत की पटुता व युक्तियो से वाल मुनि को प्रभावित करने का प्रयत्न करता रहा, पर वाल मुनि अपने ध्येय से तनिक भी विचलित नही हुआ, प्रत्युत समय-समय पर एकान्त वातावरण मे पिता को सुस्थिर करने के लिये प्रयत्न करता रहा।

पिता मुनि ने वालक मुनि को साधु मार्ग मे हटाने के लिये एक अनोखा

उपाय निकाला। वह वालक मुनि की होनी अनहोनी शिकायतें आचार्य श्री तुलसी से जाकर कहता और उनसे उसे उलहना दिलवाने का प्रयत्न करता। वहुत दिनो तक यह स्थिति चलती रही। अन्त मे एक दिन वाल मुनि कनक ने आचार्य श्री तुलसी के पास आकर अपने पिता की सारी कहानी कह डाली और साथ-साथ यह भी कहा–इतने दिन में इस प्रयत्न में था कि मेरे पिता मुनि को मै समझा सकूं पर अब यह असम्भव लगता है।

आखिर घटना वैसे ही घटी। पिता साधु-सघ से अलग हो गया और वालमुनि कनक निर्मोह भाव मे अपनी विवेकपूर्ण साधना मे दृढतापूर्वक लगा रहा।

यह एक ऐसी घटना है जो वालदीक्षा सम्वन्धी वहुत सारे प्रश्नो को अस्त कर देती है। लोग कहते है कि प्रौढ व्यक्ति का निर्णय परिपक्व होता है और वालक का अपरिपक्व। ऐसी घटनाओ से क्या उन्हे अपना निर्णय उलट नही लेना होगा ?

सरपच वालमुनि मघराज

तेरापथ के पचम आचार्य श्री मघवागणी का जन्म राजस्थान के 'वीदासर' में हुआ था। आपने लगभग ९ वर्ष की उम्र मे दीक्षा ग्रहण की। आप वचपन से ही अत्यन्त मेधावी व धैर्यशील थे। आपके वाल-जीवन की विलक्षण वातो मे एक यह है कि तेरापथ के चतुर्थाचार्य श्री जयगणी ने सघ व्यवस्था में एक पचायत का निर्माण किया। उसमे अन्य ४ वयोवृद्ध मुनि जनो के साथ एक वाल मुनि मघराज भी थे। आगे चलकर तो स्थिति ऐसी वनी कि सारी पचायत मे चतुर्दशवर्षीय वालमुनि मघराज सरपच माने गये।

उपसहार

ऐसा लगता है कि तेरापथ साधुसघ की दीक्षा सम्वन्धी व्यवस्था विधि-विधानो का एक तटस्थ अवलोकन कर लेने के पश्चात् किसी भी विचारक के हृदय मे असामंजसता जैसी कोई वस्तु नही रहेगी। आज तक भी देश के वहुत सारे गणमान्य विचारको ने दीक्षा समारोहो में भाग लिया है व दीक्षा सम्वन्धी विधि-विधानोका अति निकट से अध्ययन किया है। लगभग सभी ने तेरापथ की दीक्षा प्रणाली की मुक्त कठ से प्रशसा की है। विशेपता की वात तो यह है कि दीक्षा सम्वन्वी विधि-विधान जितने लेख-पत्रो मे है उससे कही अधिक व्यवहार मे आते है। २०० वर्षों के सुदीर्घ काल में सहस्रो व्यक्तियो की दीक्षायें हुई है पर आज तक एक भी दीक्षा के लिये किसी भी समाज, सस्था व व्यक्ति की ओर से वैधानिक आपत्ति नही उठाई गई है। दीक्षा पद्धति के औचित्यका यह भी एक समुचित मानदण्ड है। समय-समय पर वहुत सारी प्रान्तीय शासन व्यवस्थाओ में वालदीक्षा निरोध की चर्चायें होती रही है पर निकट से जान लेने के पश्चात् तेरापथी दीक्षा का विरोध विशेप रूपसे कही नही रहा। कुछ वर्पों पूर्व वडौदा स्टेट मे इस प्रकार का कानून वना था और इसके साथ-साथ न्यायमत्री मे रा रा धुरन्धर ने धारा सभा में यह स्पष्टीकरण भी किया "जैनो मा तेरापथी ओ मा वरावर तजवीज थाय छे एम तपासमा जणायुछे। तेओमा लेखिक समति थी जाहेर रीते दीक्षा अपाय छे। ने धोरणे वीजा विभागो मा दीक्षा अपाती होय तो कायदो करवानी जरूर रहे नहि, पण तेम थतु नथी।" (आज्ञा-पत्रिका धारासभा विभाग, ता १।८।१९३३ पत्र संख्या ३२३)

इस प्रकार आज भी जो तटस्थ विचारक तेरापथ की दीक्षा प्रणालीसे परिचित होते हैं वे यही कहते हैं–यही पद्धति सब धर्म सम्प्रदाओ में हो तो कानून बनाने की कोई आवश्यकता नही रह जाती। ऐसी स्थिति मे विचारने की बात यह है कि प्रथम तो हरएक सुधार कानून से हो इसमें समाज मे जडता का सचार होता है। अत छोटी-छोटी बातो के लिये पृथक्-पृथक् कानून आवश्यक भी प्रतीत नही होते। यह उचित नही होगा कि कुछ दोषो के साथ कुछ निर्दोष भी कानून में बांधे जाय। जब कि न्याय व्यवस्था का सूत्र है कि ९९ दोषी भले ही छूट जाय किन्तु उनके साथ एक निर्दोषी को दण्ड नही होना चाहिये।

परिशिष्ट

दीक्षार्थियो द्वारा दिये गये आज्ञापत्र का नमूना

श्री जिनेश्वर देवाय नम

आज्ञापत्र

श्री परम पूज्य प्रात स्मणीय, परमपावन, धर्म धुरन्धर, मगल करण, भवभव हरण, विविध गुण-भडार, अज्ञान तिमिर नाशक, बाल ब्रह्मचारी, परम तेजस्वी ऋषिराज, श्री जैन श्वेताम्बर तेरापथी सम्प्रदाय के नवम आचार्य प्रवर श्री श्री श्री १००८ श्री श्री तुलसीराम जी महाराजधिराज तथा अन्य सत मुनिराज एव गुण रत्नो की खाण पवित्रणी सम महाराज महासतिया जी श्री १०८ श्री क्षमकुजी महाराज आदि सरव महासतियो जी के चरण कमलो मे दासानुदास जेठमल भान्साली, वल्द मूलचन्दजी भान्साली, श्री डूगरगढ निवासी की विधि सहित विनयपूर्वक तिक्खुता के पाठ से वन्दना नमस्कार स्वीकार हो ।

पूज्यवर,

सविनय निवेदन है कि मेरी प्रिय पुत्री बाई छगनी का जन्म स० १९८७ चैत्र वदी १३ को हुआ था । स० २००० असाढ सुदी ९ को इसका विवाह निश्चित किया गया । वैवाहिक सभी तैयारिया प्राय कर ली गई । परन्तु निश्चित तिथि के एक सप्ताह पूर्व उसने विवाह करके सासारिक बन्धनो मे फँसना एकदम इनकार कर दिया । नाना प्रकार मे समझाने, प्रलोभन देने तथा धमकाने आदि सारे सम्भव उपाय काम में लाये गये, परन्तु उसका निश्चय अचल अटल रहा । धूम-धाम से विवाहोत्सव करने की पूरी इच्छा रहने पर भी लाचार होकर विवाह स्थगित कर देना पडा ।

भगवन् !

धीरे-धीरे इसकी वैराग्य भावना जोर पकडती गई। कम-से-कम १५ महीने तक हमने इसकी वैराग्य भावना को छिपाये रखा क्योंकि मैं बालदीक्षा का विरोधी था और कभी वह कल्पना भी न कर सकता था कि एक ऐसी बच्ची को कैसे वैराग्य उत्पन्न हो सकता है, जिसने ससार के सुख-दुःख का कुछ भी अनुभव न किया हो। इसलिये इसे ससार की तरफ आकर्षित करने की पूरी चेष्टा की गई। परन्तु इस विरक्त बालिका के दृढ़ निश्चय को पलटने में सभी उपाय असफल रहे। इसकी आतरिक वैराग्य-भावना ने मेरे बालदीक्षा विरोधी विचारो मे आमूल परिवर्तन कर दिया। विवश होकर पूरे सवा वर्ष की कठिन परीक्षा के अनन्तर सुजानगढ चतुर्मास के समय पूज्य प्रवर को इसके आन्तरिक विचारो से परिचित कराके प्रतिक्रमण आज्ञा प्रदान के लिये सविनय प्रार्थना की। पूरे ६ महीने तक वारम्बार अनुरोध प्रार्थना करने तथा पूरी परीक्षा करने के बाद सुजानगढ मे फागण वदी १ स० २००१ को आपने इसे प्रतिक्रमण सीखने की आज्ञा प्रदान की और ७ महीनो की इन्तजारी के बाद श्री भिक्षु चरमोत्सव के दिन इसको दीक्षित करने की तिथि कार्तिक वदी ८ फरमाई। उस दिन इसके हर्ष और आनन्द का पारावार न रहा।

गणिराज !

आपके परम पवित्र चरण कमलो में मैं और मेरी धर्म-पत्नी हमारी सुकुमार प्रिय पुत्री छगनी को स्वेच्छापूर्वक सप्रेम, सहर्ष समर्पित करते हुए विनीत प्रार्थना करते हैं कि आप इसे दीक्षित कर शुद्ध सयम मार्ग मे प्रवृत्त करें। इस विरक्त बालिका को अपनी शरण मे लेकर इसका जन्म

सार्थक करें। हमें पूरी उम्मीद है कि आप जैसे कुशल अनुभवी मुनि
पथ-प्रदर्शक के अनुशासन में रहती हुई यह अपना उद्देश्य अवश्य प्राप्त करेग

इस आज्ञा पत्र को हम राजी-खुशी एवं स्वेच्छा से सोच-समझ कर व
को अर्पण करने में अपना गौरव समझते हैं। इसमें हमें किसी भी प्रव
की कोई भी आपत्ति नही है। यदि किसी समय कोई उज्र आपत्ति करें
पञ्चायती राजदरबार अंग्रेजी अदालत आदि मे झूट पडे।

श्री डूगरगढ—कातीवदी ८ म० २००२।

माक्षी —

१ डी सी सेठिया,

वैरिस्टर-एट-ला सुजानगढ

२ महालचन्द भादानी,

एम एल ए, श्री डूंगरगढ

(सही) जेठमल भन्साली, श्री डूंगरग

३ छोगमल चौपडा, (सही) मनोहरी (धर्मपत्नी जेठमल

वी ए, वी एल, गगाशहर

४ वीजराज पुगलिया

श्री डूगरगढ

५ हीरालाल भन्साली

श्री डूंगरगढ